समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार का मासिक

उत्तर प्रदेश

जुलाई, 2026, वर्ष 50

₹ 15/-

स्वाति बरनवाल

समय और मैं

—शिव कुमार मिश्र 'नीलकंठ'

खुली खिड़की से
मुस्काता चाँद देख,
मेरा मैं—
अवश्य मुस्काता।
मगर—
दरख्तों को झकझोर
भूत—सी आयी
तेज ठंडी हवा,
इसके पहले कि—
कलेजा कंपा कर
दहला देती,
मेरी मां का
मेरे ऊपर
आंचल था;
मैं—
निहाल था।
ऐसा लगता था
कि—
मां बैठी है।
मैं स्थित हूँ।
पेड़ शान्त हैं।
बस—
हवा चलती है,
कभी तेज
कभी मंद
कभी गर्म
कभी ठंड।
मगर—
मांग के काले बाल
उड़ने लगे,
सफेद हो,
गिरने लगे,
आंचल
छोटा हो गया
और मैं—
क्या से क्या हो गया?
चुपचाप—चुपचाप।
निस्तब्ध—पदचाप।
शोर नहीं, शान्त;
भीड़ नहीं,
एकान्त,
खामोश उदासीनता।
मां को डंडा, चश्मा
कुछ नहीं दिखता।
पर, देखो उसे देखो
थका नहीं
चल रहा है,
कुछ न कुछ
कर रहा है।
सुनो—
ध्यान से सुनो
बस—
धक—धक—धक
टिक—टिक—टिक।

मो. : 9847028059

उत्तर प्रदेश

❑ वर्ष–50 ❑ अंक–89
❑ जुलाई, 2026

अनुक्रम

आलेख

- गीत जो मातृभक्ति का उद्‌घोष बन गया ❑ इंजी. आशा शर्मा / 3

कहानियाँ

- जुझारू ❑ पवित्रा अग्रवाल / 6
- अतीत की तलाश ❑ अनुजा / 10
- कंटीला सुख ❑ पारुल हर्ष बंसल / 17
- विरासत की जड़ें और डिजिटल स्क्रीन ❑ पायल सोनी / 21

कविताएँ

- समय और मैं ❑ शिव कुमार मिश्र 'नीलकंठ' / आवरण–2
- मुझे अब डर नहीं लगता ❑ सैय्यद नाजिश अहमद / आवरण–3
- मौन पथिक ❑ समर पाल सिंह / 23
- सांझ ❑ रतन खंगारोत / 25
- गीत का पहला चरण हूँ ❑ अनुजा 'मनु' / 27

लघुकथा

- भरोसा ❑ डॉ. अलका जैन 'आराधना'

पुस्तक समीक्षा

- समझावनपुर ❑ सुरेन्द्र अग्निहोत्री / 28
- कारुं का खजाना ❑ डॉ. नीलोत्पल रमेश / 30

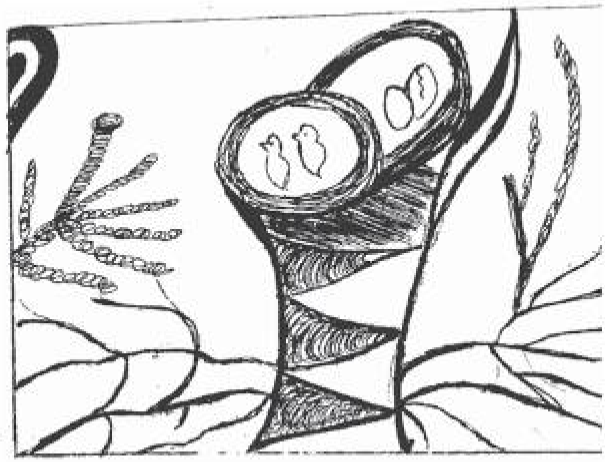

संरक्षक एवं मार्गदर्शक : ❑ संजय प्रसाद
अपर मुख्य सचिव, सूचना

प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी : ❑ विशाल सिंह
सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश

❑ अरविन्द कुमार मिश्र
अपर निदेशक, सूचना

❑ चन्द्र विजय वर्मा
सहा. निदेशक (प्रकाशन)

प्रभारी सम्पादक सूचना : ❑ दिनेश कुमार गुप्ता

सहयोग : ❑ अजय कुमार द्विवेदी
सहयुक्त सम्पादक

आवरण : स्वाति वरनवाल

भीतरी रेखांकन : अवधेश मिश्रा / स्वाति वरनवाल

सम्पादकीय संपर्क : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
ईमेल : **upmasik@gmail.com**

दूरभाष : कार्यालय : ई.पी.ए.बी.एक्स 0522–2239132–33, 2236198, 2239011

पत्रिका information.up.nic.in वेबसाइट पर उपलब्ध है।

❑ एक प्रति का मूल्य : पंद्रह रुपये
❑ वार्षिक सदस्यता : एक सौ अस्सी रुपये
❑ द्विवार्षिक सदस्यता : तीन सौ साठ रुपये
❑ त्रैवार्षिक सदस्यता : पांच सौ चालीस रुपये

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे मासिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' और सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
—सम्पादक

आवर्तन

हर पल खास है। नवीनता का संचार ही साहित्य की सबसे बड़ी पूंजी है। पुरातनता में उलझे रहने से साहित्य का रथ आगे नहीं बढ़ता। साहित्य संवाद का जरिया है। भाषा और भावना का विस्तार है। विस्तार में अतिरेक भी होता है। लेकिन साहित्य संतुलन का भी होता है। वह समाज और राष्ट्र के बीच सेतु की भूमिका निभाता है। हमें यह कहने को रंचमात्र भी संकोच नहीं है कि उत्तर प्रदेश मासिक साहित्यकारों और पाठकों के बीच अपनी भूमिका का पूरी दृढ़ता के साथ निर्वहन कर रही है। जुलाई अमूमन बरसात का महीना होता है। बरसात पृथ्वी पर हरीतिमा का संचार करती है। धरती को शस्य श्यामला बनाती है, तो वहीं बरसात के अपने खतरे भी होते हैं। जलप्लावन, तूफान और भूस्खलन जैसी आपदाएं भी लाती है। इसका असर सीधे तौर पर लोकजीवन पर पड़ता है। वन–वृक्ष साहित्य के सहज आकर्षण रहे हैं। पौधे लगाने और बचाने की प्रेरणा कवियों, लेखकों ने सदा दी है। उन्हें पता है कि जंगल केवल लकड़ी के भंडार ही नहीं, जीवन के आधार भी हैं। अगर हमारे पूर्वजों ने पेड़–पौधों की सुरक्षा न की होती तो हम छाया, फल, वर्षा, स्वच्छ वायु और प्राकृतिक उपहारों से वंचित रह जाते। पर्यावरण संरक्षण को लेकर साहित्यकारों के प्रयास को नकारा नहीं जा सकता। पेड़ ऑक्सीजन ही नहीं देते, शांति भी प्रदान करते हैं। शांति के बिना साहित्य सृजन वैसे भी असंभव है। इस माह के वन महोत्सव में हमारा सहयोग ही सच्ची साहित्य सेवा है।

साहित्य संसार भी इन प्रभावों से अछूता नहीं रहता। जुलाई माह में कवियों, लेखकों, कहानीकारों और समीक्षकों, आलोचकों की भावनाएं वर्षा जल की तरह प्रवाहित होती हैं। इस माह में मुंशी प्रेमचन्द रामधारी सिंह 'दिनकर' अमिताभ घोष, रस्किन बांड, अमिता देसाई जैसे बड़े साहित्यकारों ने जन्म लिया है और अपनी लेखनी से देश की जनता को शिक्षित सुसंस्कृत और अनुप्राणित करने का भरसक प्रयास किया। वहीं गोस्वामी तुलसीदास, गोपाल दास नीरज, बाबूलाल मधुकर प्रभृति रचनाकारों ने साहित्यिक दुनिया को अपने विचारों–भावनाओं से न केवल सचेष्ट किया बल्कि सबका साथ, सबका विकास, सर्वधर्म समभाव जैसी सामाजिक सांस्कृतिक विरासत को भी ताजिन्दगी आगे बढ़ाते रहे। साहित्य व्यक्ति की सुकोमल भावनाओं का प्रतिनिधि स्वरूप है। 'उत्तर प्रदेश मासिक' अपने प्रकाशन के दिन से ही साहित्य की सेवा में रत है। वह यथासंभव पाठकों के दिल में अपनी जगह बनाए हुए है। नवोदित लेखकों को प्रोत्साहित करने की हमारी कोशिश तो रहती ही है लेकिन स्थापित और लोकप्रिय साहित्यकारों को स्थान देना भी हमारी प्राथमिकताओं में शामिल है। पत्रिका के प्रति बढ़ता लोक आकर्षण इसकी बानगी है। भविष्य में भी हमारी कोशिश समय के साथ तालमेल करते हुए आगे बढ़ने की है। उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य है। इसकी प्रगति में ही राष्ट्र का समग्र हित निहित है। इसी माह की 5 जुलाई को पंडवानी की ख्यातिलब्ध महान नृत्यांगना तीजनबाई ने देह त्याग कर परमात्मा के लोक को प्रयाण किया है। उन्हें हमारी विनम्र श्रद्धांजलि।

आशा है, आप सुधी पाठकों को पत्रिका पसंद आएगी। आपके सुझावों और प्रतिक्रियाओं की दिली अपेक्षा है।

● दिनेश कुमार गुप्ता

गीत जो मातृभक्ति का उद्घोष बन गया

❑ इंजी. आशा शर्मा

डेढ़ शताब्दी पूर्व गीत लिखते वक्त शायद बंकिमचन्द्र चटर्जी को यह पूर्वाभास हो गया होगा कि वे भविष्य को एक अमर रचना देने जा रहे हैं। इसी आधार पर अमरेन्द्र लक्ष्मण गाडगिल ने अपने लेख "वंदे मातरम्" में दो प्रसंगों का उल्लेख किया है। एक तो उन्होंने स्वयं कहा है, "मेरी सारी कृतियाँ गंगा में डुबो दो तो कोई हानि नहीं होगी परंतु यह एक शाश्वत महान गीत बचा रहेगा तो देश के हृदय में मैं जीता रहूँगा।"

एक बार उन्होंने अपनी पुत्री से कहा था, "एक दिन ऐसा आएगा कि बंगभूमि इस गीत को सुनकर नाचने लगेगी। एक बंगाल क्या सारा हिंदुस्तान इस गीत से प्रेरणा ग्रहण करेगा। सारा देश एक सुर से यह गीत गाने लगेगा।" ऐसे ही पल जब सत्य में परिवर्तित होते हैं तब सरस्वती का जिह्वा पर बैठना कहा जाता है।

एक मान्यता के अनुसार इस गीत के साक्षात दर्शन उन्हें स्वप्न में हुए थे। कहा जाता है कि निद्रा में वे इस गीत के पदों का उच्चारण कर रहे थे तब उनके भांजे ने उन्हें सुना और उनके शब्दों को लिपिबद्ध कर लिया। यह मान्यता सही मानी जा सकती है क्योंकि इस प्रकार की रचनाएं किसी दैवीय आदेश से ही प्रस्फुटित हो सकती हैं।

सर्व ज्ञात तथ्य है कि इस गीत की रचना बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 9 नवंबर, 1875 को की थी। बांग्ला संस्कृत मिश्रित यह गीत 1882 में उनके उपन्यास आनंदमठ का हिस्सा बना। कुछ लोग गीत की क्लिष्ट भाषा पर आपत्ति करते हैं किन्तु आरोप वाले शायद यह भूल जाते हैं कि भावों की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति केवल मातृभाषा में ही हो सकती है किसी अन्य में नहीं। यही कारण रहा कि बंकिमचन्द्र जी बांग्ला भाषा में इसके सम्पूर्ण सौन्दर्य को प्रस्तुत कर सके। संस्कृत तो वैसे भी सभी भाषाओं की जननी कही जाती है इसलिए इन दोनों भाषाओं का समावेश इस गीत को मातृभक्ति तथा उसके सौंदर्य की पराकाष्ठा तक ले जाता है।

कहावत तो है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि आखिर इस प्रकार के किसी गीत की आवश्यकता हुई ही क्यों? तो उत्तर मिलता है कि वह समय जब भारतवर्ष अपनी राजनैतिक एकात्मता के खंडित होने को अपना भाग्य समझकर स्वीकार कर चुका था। आकंठ निराशा में डूब चुका था। तब किसी शक्तिशाली नाद के बिना उसकी निद्रा भंग नहीं हो सकती थी। उसे झिंझोड़ने का उद्देश्य ही इसके रचाव की पृष्ठभूमि बनी होगी। यहाँ तक तो ठीक है, किन्तु अब इसका सह प्रश्न भी साथ ही सिर उठा रहा है कि देशभक्ति गीत की रचना तो समझ में आती है, लेकिन इसे माँ के रूप में क्यों देखा जाये? कोई अन्य रूप क्यों नहीं? हिन्दी व्याकरण के पैमाने पर तो "देश" शब्द पुलिंग है।

संभावना यह हो सकती है कि इस गीत के सृजन से भी पहले बंकिमचन्द्र जी के हृदय के किसी कोने में उपन्यास "आनंदमठ" करवटें ले रहा होगा। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि लगभग एक सौ बीस वर्ष पूर्व घटित हुए संन्यासी विद्रोह की घटना थी। ये संन्यासी मातृभूमि की माता की तरह पूजा–अर्चना करते थे। तत्पश्चात यह गीत इस उपन्यास का हिस्सा बना और चर्चित हुआ।

वैसे पृथ्वी को माता के रूप में पूजने की परम्परा नई नहीं है। यह अलग बात है कि केवल भारत ही ऐसा गणराज्य है जो यह कहते हुए ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'' अर्थात् ''भूमि (धरती) मेरी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ'' पृथ्वी को माता के दिव्य स्वरुप में पदस्थापित करता है। (अथर्ववेद 'पृथ्वी सूक्त' (कांड 12, सूक्त 1, मंत्र 12)

तत्पश्चात प्रसिद्ध इतिहासकार वासुदेव शरण अग्रवाल एक लेख में मातृभूमि को "नये युग की देवता" घोषित करते हुए लिखते हैं– "मातृभूमि के मन में अग्नि का निवास है। वही अग्नि पृथ्वी–पुत्रों के हृदय में उत्पन्न होती है। जब वह आग धधकती है, हर एक वस्तु जिसका रंग काला जान पड़ता था चमकीली बन जाती है। मातृभूमि इसी अग्नि का वस्त्र पहने हुए हैं। उसकी गोद में जो बैठेगा, वह चमके बिना न रहेगा।" उपरोक्त तथ्यों के आधार पर माना जा सकता है कि भारत भूमि को माता के रूप में प्रतिष्ठित करने की शुरुआत संभवतः इसी गीत से हुई होगी।

इस गीत को विद्रोह गीत भी कहा जा सकता है क्योंकि यह अंग्रेजी शासन द्वारा अपने सम्राट की रक्षा हेतु थोपे गए भक्ति गान ''गॉड सेव द किंग/क्वीन के प्रतिशोध में लिखा गया गीत भी है। शायद उन्हें यह याद दिलाने के लिए भी कि मनुष्य की जीवन प्रदाता यह पृथ्वी, यह भूमि है न कि कोई सम्राट या साम्राज्ञी। इसलिए वंदना के रूप में इसके माँ स्वरूप की स्तुति की जानी चाहिए न कि किसी व्यक्ति विशेष की।

इसे संघर्ष के दौर में बंगाल में चल पड़ी देशभक्ति गीत रचाव की परम्परा का एक मुख्य पड़ाव भी माना जा सकता है क्योंकि इस गीत का सृजन बंगाल में 1867 में शुरू हुए ''हिन्दू मेला'' के पश्चात हुआ था। इस मेले में अन्य गतिविधियों के साथ–साथ देशभक्ति से परिपूर्ण गीत, कविता पाठ तथा व्याख्यान आदि का आयोजन भी किया जाता था। उसी अवसर पर कविवर रबीन्द्र नाथ ठाकुर के बड़े भाई सत्येंद्र नाथ ठाकुर ने देशभक्ति गीत ''मिले सबे भारत संतान, एक तान गाहो गान'' को रचा था।

गीत की पृष्ठभूमि, उसके रचाव का उद्देश्य तथा रचनाकार के अपने विचार... इन तथ्यों पर मतभेद अथवा भिन्न अवधारणा हो सकती है किन्तु इस कथ्य से किसी का विरोध नहीं कि समय के साथ गीत जन–जन की जुबान बनता गया और इसके साथ ही यह भी साबित होता गया कि वन्दे मातरम् केवल गीत नहीं था, यह क्रांति का बिगुल था। ऐसा बिगुल जिसने केवल बंगाल ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारतवर्ष की धमनियों में प्रवाहित हो रहे लहू में उबाल ला दिया था। उसमें शक्ति के साथ–साथ विद्रोह का संचार भी कर दिया था। अनेकानेक स्वाधीनता के दीवाने इसका उद्घोष करते हुए मृत्यु का आलिंगन करने से भी नहीं हिचके।

गीत का जादू भारतवर्ष के सिर चढ़कर बोल रहा था। मूल भाषा गौण हो गई थी। अलग–अलग भाषाओं में इसके अनुवाद हो रहे थे। जी जान से जुटे सुब्रमण्यम भारती (तमिल), अरबिंदो घोष (अंग्रेजी) तथा आरिफ मोहम्मद (उर्दू) में इसे अनूदित करते हैं। पंजाब के लाला लाजपत राय ने तो इसे अपने जीवन के अंतिम क्षण तक गाते रहने का प्रण तक कर लिया था।

केवल महानायक ही नहीं बल्कि छोटे–छोटे बालक भी इसे एक उद्‌बोधन के रूप में अंगीकार कर चुके थे। एक तरफ यह गीत स्वतंत्रता सेनानियों के मध्य अभिवादन का माध्यम बन गया था वहीं दूसरी तरफ अंग्रेजी साम्राज्य भी इस गीत में समाहित शक्ति को भांप चुका था तभी तो घबराया, बौखलाया इस उद्‌घोष को प्रतिबंधित करके कुचलने के प्रयास में जुट गया था किन्तु फिर भी इसके जोश की अग्नि को लेशमात्र भी कम नहीं कर पाया। यह उत्तरोत्तर अधिक से अधिक दग्ध होती ही चली गई।

वन्दे मातरम् गीत में भारत भूमि की माता के रूप में कल्पना करके उसकी स्तुति की गई है। किन्तु इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि भारत मां के ही कुछ कुपुत्रों की आँखों में माँ का वह भव्य रूप खटकने लगा था। एक सांप्रदायिक दल ने इस पर हिन्दू गीत होने का आक्षेप लगाकर इसका बहिष्कार कर दिया तो दूसरे दल के तत्कालीन नेताओं ने इस आपत्ति को स्वीकार करते हुए इस गीत के टुकड़े करने का निर्णय भी तत्काल ले लिया। संयोग देखिए कि भविष्य में विभाजन मात्र गीत का ही नहीं हुआ बल्कि देश का भी हो गया, इस समस्त घटनाक्रम में एक ही राजनीतिक दल की मुख्य भूमिका रही। बात वहीं थमी नहीं थी। वन्दे मातरम् के प्रति विचारधारा विशेष के लोगों में नफरत का भाव आज भी यथावत है।

इस भव्य गीत की लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि एक सर्वेक्षण के अनुसार 2003 में बीबीसी वर्ल्ड द्वारा करवाए गए "सर्वाधिक लोकप्रिय गीत सर्वेक्षण" में विश्वभर के सात हजार गीतों में यह गीत द्वितीय स्थान पर रहा। इस सर्वेक्षण में 155 देश/द्वीप के निवासियों द्वारा मतदान किया गया था।

पन्द्रह अगस्त 1947 की प्रातः साढ़े छह बजे आकाशवाणी से पंडित ओंकार नाथ ठाकुर का राग देश से निबद्ध वंदे मातरम के गायन का सजीव प्रसारण हुआ था। ओंकार नाथ जी ने इस गीत को जन गण मन की तरह सम्मान देते हुए खड़े रहकर यह गीत गाया था। इसका पूरा श्रेय सरदार वल्लभ भाई पटेल को जाता है। यही वह गीत है जिसका सृजन करने हेतु अरविंद घोष ने बंकिमचन्द्र चटर्जी को ''राष्ट्रवाद का ऋषि'' कहकर पुकारा था। आज भी इसका उद्‌घोष रोम–रोम में सिहरन पैदा कर देता है। सुनने वालों का सर्वांग कंपित होने तथा भुजाएं फड़फड़ाने लगती हैं। हृदय में आनंद, उमंग और जोश की उत्तंग लहरें उठने लगती हैं।

इतना सब होने के पश्चात भी जब गीत के मात्र दो ही छंदों को राष्ट्रीय गीत के रूप में मान्यता मिली तो राष्ट्र प्रेमियों के मन में अवसाद की कल्पना सहज ही की जा सकती है। लेकिन संघर्ष रुका तो नहीं था। प्रयास थमे भी नहीं थे। उम्मीद टूटी भी नहीं थी। और अंततः यह संघर्ष रंग लाया, जब भारत सरकार ने एक अधिसूचना जारी करते हुए यह घोषणा की कि "राष्टगान से पहले होगा वंदे मातरम्"। केन्द्रीय गृह मंत्रालय ने 28 जनवरी के आदेश में इस गीत हेतु नए दिशा निर्देश जारी किये हैं जिनके अनुसार अब से स्कूलों तथा सरकारी कार्यक्रमों में राष्ट्रगान से ठीक पहले इसे अनिवार्य रूप से गाया जायेगा। इसके सभी छः अंतरे गाने होंगे। राष्ट्रगीत के सभी अंतरे तीन मिनट दस सेकंड में गाने होंगे तथा इसे सावधान की मुद्रा में खड़े होकर गाना होगा। यदि यह किसी डॉक्यूमेंट्री अथवा किसी फिल्म के हिस्से के रूप में बजाया जा रहा हो ऐसी स्थिति में दर्शकों को खड़े नहीं होने की छूट दी जाएगी क्योंकि इससे फिल्म के प्रस्तुतिकरण में बाधा आ सकती है। इसके साथ ही सभी सरकारी विद्यालयों में दिन की शुरुआत इसके सामूहिक गायन से सुनिश्चित की जाएगी। हालाँकि ऐसा नहीं करने वालों पर अभी किसी दंड अथवा कानूनी कार्यवाही का कोई प्रावधान नहीं रखा गया है किन्तु शायद इसकी नौबत भी नहीं आएगी क्योंकि मातृभूमि की वंदना करने वाली ऐसी कालजयी रचना से किसी को कोई परहेज होगा ऐसा सोचना भी अल्प ज्ञान ही होगा। ◆

पता : I–123, करणी नगर (लालगढ़),
बीकानेर– 334001
मो. : 9413369571

जुझारू

❑ पवित्रा अग्रवाल

मैं बहुत देर से शांता बाई का इंतजार कर रही थी। उसका मोबाइल भी बंद आ रहा था, मुझे विश्वास सा होने लगा था कि आज वह डुम्मा मारने वाली है। उससे इतनी बार कहा है कि मुझे तेरे छुट्टी लेने से परेशानी नहीं है, तू एक नहीं, चार छुट्टी ले ले पर बता कर ले। पहले से पता हो तो बर्तन साथ के साथ साफ कर के रखने में परेशानी नहीं होती पर पूरे दिन के इकट्ठे माँजने में तकलीफ होती है। वैसे भी पहले से पता हो तो किसी को लंच या डिनर पर बुलाना भी टाला जा सकता है।

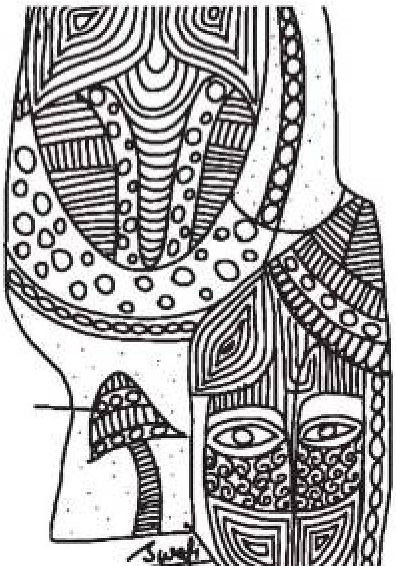

कल रात को कुछ परिवार जनों को खाने पर बुला लिया था तो बर्तन भी बहुत इकट्ठे हो रहे थे, उन्हें देख देख कर घबराहट हो रही थी... पर एक छोटी सी बात इन लोगों की समझ में नहीं आती।

उसे हमेशा यह भी कहती हूँ कि एक मिस्ड कॉल दे दिया कर, बात मैं कर लूँगी पर चुपचाप बिना कहे घर मत बैठा कर। अब मालूम है कल आकर कहेगी 'आंटी मोबाइल में बैलेंस ही नहीं था तो मिस्ड कॉल कैसे देती?' वैसे हर बात का उस के पास एक बहाना होता है।

अब आगे से बर्तन और झाड़ू–पोंछे के लिए अलग अलग कामवाली रखूँगी। एक न आये तो पैसे देकर दूसरी से वह काम करा लो और उसके पास भी समय न हो तो दोनों काम तो खुद नहीं करने पड़ेंगे।

तभी दरवाजे की घंटी बजी, शांता बाई को दरवाजे पर देख कर मेरा गुस्सा गायब हो गया। ऐसी राहत मिली जैसे कोई बहुप्रतीक्षित मुराद पूरी हो गई हो।

"शांता बाई आज तो आने में बहुत देर कर दी? मैं बरतन साफ करने जा ही रही थी।"

"हाँ आंटी मेरा आज आने का मन नहीं था। आ तो गई हूँ पर पूरा काम कर के नहीं जाऊँगी, बर्तन माँज कर हॉल का झाड़ू पोंछा कर दूँगी बस।"

"ऐसा क्यों? कहीं जाना है क्या?"

"नहीं आंटी जाना तो कहीं नहीं है पर सिर में बहुत दर्द हो रहा है। कुछ करने का मन नहीं कर रहा।"

"कुछ खा कर आई है?"

"हाँ, आंटी उपमा खाकर आई हूँ।"

"फिर ठीक है, मैं अभी सर दर्द की गोली दे रही हूँ, पहले उसे खा ले। बुखार तो नहीं है न? तू कुछ परेशान भी दिख रही है?"

"नहीं आंटी, बुखार तो महसूस नहीं हो रहा पर घर में हर समय टेंशन रहता है। भाई–भाभी मुझ से झगड़ा करते रहते हैं और माँ उनसे कुछ नहीं कहती।"

मैं ने उसे दवा देते हुए कहा– "तू अपना कमाती है, अपना खर्चा खुद उठाती है फिर वे झगड़ा क्यों करते हैं?"

"उनको मेरा साथ रहना अच्छा नहीं लगता। वे कहते हैं 'तू किराये का कमरा लेकर अलग रह।' ...अलग रहने का मतलब है कम से कम चार हजार रुपये किराया, मेरी इतनी औकात कहाँ है आंटी? पूरा महीना मेहनत करती हूँ तो छह–सात हजार कमा पाती हूँ, किराया कहाँ से दूँगी?"

"तो क्या तुम भाई–भाभी के साथ रहती हो?"

"नहीं मैं तो अपनी माँ के साथ रहती हूँ भाई–भाभी भी उनके साथ रहते हैं। पिता नहीं हैं पर वह घर पिता का है। जब भाई वहाँ रह सकता है तो मैं क्यों नहीं? वैसे मैं उनके साथ रहती जरुर हूँ पर अपनी कमाई से पकाती, खाती हूँ। बस दो कोठरी मेरे पास हैं, दो बच्चे पढ़ने वाले हैं...बेटी इंटर में पढ़ रही है और बेटा पॉलिटेक्निक में है।"

"इन हालात में भी तू बच्चों को पढ़ा रही है, यह बहुत अच्छी बात है। बच्चों के पिता कहाँ रहते हैं?"

"गाँव में रहते हैं, मेरी बेटी जब छह महीने की थी तभी मैं उनको छोड़ कर यहाँ चली आई थी, तब तो मेरे पिता भी जिन्दा थे।"

"क्यों छोड़ आई थी?"

"आंटी कुछ काम–धंधा तो करता नहीं था, ऊपर से शराब का शौक भी पाल रखा था...और शराब के बाद क्या होता होगा आप अंदाजा लगा सकती हैं।"

"तेरे ससुराल में और कोई नहीं है?"

"कहने को तो सास–ससुर जेठ–जिठानी सब हैं आंटी, पर जिसका लड़का शराबी–कबाबी हो, निठल्ला हो और साथ में बीबी और दो बच्चों वाला भी हो तो, उसको कोई कब तक पालेगा? और वे भी रोज खाने–कमाने वाले साधारण लोग ही थे।"

"ऐसी हालत में उन्हें उसकी शादी नहीं करनी चाहिए थी।"

"बिगड़े लड़के को सुधारने के लिए माता–पिता को शादी करने की बात ही समझ में आती है उन्होंने भी शायद यही सोचा होगा कि शादी के बाद सुधर जाएगा।"

"हाँ यह बात तो है।"

"फिर भी मैंने निभाने की बहुत कोशिश की। बड़े बच्चे को जबरदस्ती घर में छोड़ जाती थी पर छोटी बच्ची को घर में कोई रखने वाला नहीं था उसे झोली में पीठ पर लटका कर मजदूरी करने जाती थी तो ठेकेदार गुस्सा करता था और पगार भी कम देता था।"

"वहाँ क्या काम करती थी?"

"वहाँ कोई बिल्डिंग बन रही थी तो वही सब काम था, कभी सिर पर ईटों का बोझ उठा कर ऊपर ले जाना, कभी सीमेंट, रेती उठाना। एक बार तो मेरी बेटी मरते–मरते बची।"

"कैसे?"

"उस समय बेटी मेरी पीठ पर झोली में लटकी थी और मैं एक–एक ईट उठा कर सिर पर रख रही थी तो ईट हाथ से छूट गई, पता नहीं कैसे वह बच्ची पर नहीं गिरी। ठेकेदार को दया आ गई फिर उसने मुझे दूसरा काम तो दे दिया पर था वह हरामी।"

"हाँ ऐसी कुछ तस्वीरें तो मैंने भी देखी है जिनमें एक औरत पीठ पर बच्चे को लटका कर सिर पर बहुत सारी ईटों का बोझ ढोकर ले जा रही है, उसे देख कर दुख होता था और डर भी लगता था कि कभी यह ईंट बच्चे पर गिर जाए तो क्या होगा।"

"हाँ आंटी डर तो मुझे भी लगता था पर मजबूरी थी लेकिन जल्दी ही मैंने वह काम छोड़ दिया था फिर खेतों मे

मजदूरी करने लगी। लौटते में खेत मालिक के घर या कभी अपने घर के लिए सूखी लकड़ी का बोझा लाद कर लाती थी ताकि घर का चूल्हा जल सके। बड़ा मुश्किल समय था आंटी, वहाँ रहती तो एक दिन या तो मैं उसे मार देती या वह मुझे मार देता या फिर बच्चों के साथ किसी कुए में कूद कर मर जाती। शहर होता तो यहाँ की तरह वहाँ भी घरों में काम कर लेती। पता नहीं क्या देख कर बाप ने वहाँ ब्याह दिया था। मेरा हाल देख कर बाद में उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ था, इसलिए मुझे वापस जाने को नहीं कहा। बच्चों को माँ के पास छोड़ कर मैंने कुछ घरों के काम पकड़ लिए थे। घर में किसी को मेरा यह काम करना अच्छा नहीं लगा था पर मुझे तो अपने पैरों पर खड़ा होना ही था। और क्या करती, पढ़ी– लिखी तो थी नहीं और दूसरा कोई काम आता भी नहीं था पर पिता ने मुझे एक पैसा भी खर्च नहीं करने दिया। बैंक में मेरा खाता खुलवा कर उसमें जमा कराते रहने को कहा, हमारा सब खर्चा वही उठाते थे, उनके रहते कभी कोई परेशानी नहीं हुई थी।"

शहर होता तो यहाँ की तरह वहाँ भी घरों में काम कर लेती। पता नहीं क्या देख कर बाप ने वहाँ ब्याह दिया था। मेरा हाल देख कर बाद में उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ था, इसलिए मुझे वापस जाने को नहीं कहा। बच्चों को माँ के पास छोड़ कर मैं ने कुछ घरों के काम पकड़ लिए थे। घर में किसी को मेरा यह काम करना अच्छा नहीं लगा था पर मुझे तो अपने पैरों पर खड़ा होना ही था। और क्या करती, पढ़ी– लिखी तो थी नहीं और दूसरा कोई काम आता भी नहीं था पर पिता ने मुझे एक पैसा भी खर्च नहीं करने दिया। बैंक में मेरा खाता खुलवा कर उसमें जमा कराते रहने को कहा, हमारा सब खर्चा वही उठाते थे, उनके रहते कभी कोई परेशानी नहीं हुई थी।"

"पिता को गए कितने दिन हो गये?"

"पांच साल हो गए आंटी, तभी भाई की शादी कर के चुके थे। उनके जाते ही मैं भाई–भाभी की आँखों में खटकने लगी। तभी से मैंने अपना खाना–पकाना अलग कर लिया था।"

"तुम्हारा तलाक हो गया?"

"नहीं आंटी! तलाक लेने के बारे में मैंने कभी सोचा भी नहीं, मैं बच्चों को पालती या कोर्ट कचहरी के चक्कर लगाती फिर इतना पैसा या समय भी मेरे पास कहाँ था?"

"कुछ खर्चा बच्चो के पालन–पोषण के लिए दिया उसने?"

"उसके पास कुछ होता तो मैं ही वापस क्यों आती? मैं ने कभी माँगा भी नहीं और चुपके से अपना रास्ता अलग कर लिया।"

"अलग होने के बाद वह कभी तुझसे या बच्चों से मिलने आया?"

"नहीं कभी नहीं। हमारे यहाँ बच्ची बड़े होने पर फंक्शन किया जाता है,बेटी के बड़े होने पर उसे भी बुलाया था पर नहीं आया।" उस की संघर्ष गाथा सुन कर मुझे अपने एक परिचित की याद आ गई, उस लड़की का कहीं अफेयर था पर माता–पिता का विरोध करने की हिम्मत नहीं जुटा पाई लेकिन ससुराल में भी एडजस्ट नहीं हो पाई और लड़ झगड़ कर वापस अपने घर लौट आई।

उसने और उसके घर वालों ने मिल कर ससुराल वालों पर दहेज प्रताड़ना का झूठा आरोप लगा कर उन्हें गिरफ्तार करवा दिया। बाद में वे छूट गए पर केस अभी भी कोर्ट में है। अब वह दुखी होती है जिससे प्यार था वह भी अपना घर बसा कर दूर जा चुका है और अब माँ–बाप पर दबाव डाल रही है कि आपसी रजामंदी से तलाक ले कर कोर्ट से मुक्ति पाना चाहती है ताकि आगे के जीवन के विषय में कुछ सोच सके।

"अरे आंटी, आप क्या सोचने लगीं? मैं भी बातों में लग गई। मुझे जल्दी से बर्तन खाली करके दे दो।"

"अरे हाँ, मैं भी कुछ सोचने लगी थी।"

वह अपने काम में लग गई थी पर मैं उससे बात करती रही– "शांता अब घर का क्या चक्कर है?"

"जब तक पिता थे तब तक तो सब ठीक था पर अब पिता नहीं हैं, भाई की शादी हो चुकी है। भाई–भाभी को मेरा

वहां रहना अच्छा नहीं लग रहा। उन्हें लगता है मैं घर के दो कमरों पर कब्जा कर के बैठी हूँ, पता नहीं खाली करूंगी या नही।"

"क्या घर भाई का है?"

"नहीं घर मेरे पिता का है पर किसी के नाम नहीं किया है, मैं शहर में पली–बढ़ी, आठ क्लास ही पढ़ पाई थी कि बिना ठीक से देखे भाले गाँव में मेरी शादी कर दी। बाद में बहुत पछताते थे...अब भाई कहता है कि "तेरे को अलग कमरा दिला देता हूँ, किराया मैं दे दूँगा,"

"फिर तूने क्या कहा?"

"मैंने कह दिया मैं ही क्यों जाऊँ? मेरा साथ रहना अच्छा नहीं लगता तो तुम चले जाओ, मैं तो यहीं रहूंगी। आंटी किराये की बात तो मुझे हटाने के लिए कही थी, हो सकता है एक दो महीना किराया दे भी देता पर आगे की क्या गारंटी थी? वैसे भी मुझे अम्मा का बहुत सहारा मिला है। अम्मा बच्चों को देख लेती थीं तो मैं काम पर निकल पाई और परिवार के साथ रहता देख मुझ पर भी लोग गलत नजर नहीं डाल पाए। अम्मा का अब भी बहुत सहारा है आंटी, आज का समय कितना खराब है, घर में जवान बेटी है। माँ के रहते मुझे उसकी चिंता नहीं रहती, दोनों बच्चे पढ़ कर जब घर लौटते हैं तो उन्हें घर खुला मिलता है।"

"माँ भी घर छोड़ने को कहती हैं?"

"माँ घर छोड़ने को तो नहीं कहतीं पर भाई से भी कभी यह नहीं कहतीं कि तू बहन से लड़ाई क्यों करता है, वह यहीं रहेगी।"

"शांता तुम्हारी माँ की भी मजबूरी होगी, पति हैं नहीं उन्हें भी बुढ़ापे की सोच कर चलना है इसलिए बेटे से कुछ कहते डरती होंगी।"

"हाँ आंटी, बात तो आपकी सही है पर वे दोनों तो अभी ही माँ को कुछ नहीं समझते...कल किसने देखा है?...पर मुझे सबसे बुरी बात यह लगती है कि घर हमारे बाप का है, इसी में रह कर हम पले, बड़े हुए पर वह दूसरे घर से आई भाभी अपने को घर की मालकिन समझने लगी है और हमें घर छोड़ने को कहती है, तो गुस्सा नहीं आएगा आंटी?"

"हाँ बात तो परेशानी की है पर अब क्या सोचा है?"

"सोचना क्या है आंटी, मुझे बच्चों का भविष्य बनाना है। इतनी जल्दी हार मानने वाली नहीं हूँ, मैं वह घर तो नहीं छोड़ूँगी।"

फिर कुछ रुक कर बोली– "आंटी आपसे बात करके मन हल्का हो गया, घर में कोई ऐसा भी तो नहीं है जिससे मन की बात कह सकूँ...बेटा कमाने लायक हो जाए तो कुछ राहत मिले, बेटी को पढ़ाई के साथ–साथ टेलरिंग का कोर्स भी करा रही हूँ, समय पड़ने पर अपने घर से ही सिलाई का काम कर सकती है।"

"हाँ यह तो बहुत अच्छा है।"

"घर–बाहर के लोग कहते हैं" लड़की की पढ़ाई में इतना खर्चा करने की क्या जरूरत है, उसकी शादी के लिए पैसा जोड़ "...शादी तो बहुत दूर की बात है, उसके विषय में मैं अभी सोच भी नहीं सकती पर उसे इतना काबिल जरुर बना देना चाहती हूँ कि भविष्य में उसे किसी के रहमोकरम पर न रहना पड़े। इज्जत से वह जी सके। आंटी, आप बताओ क्या मैं गलत हूँ?"

"नहीं शांता तुम बिलकुल ठीक कर रही हो, बस हिम्मत नहीं हारना।"

"हिम्मत तोड़ने की कोशिश तो बहुत की जा रही है आंटी, पर मैं टूटूँगी नहीं। अब मैं चलती हूँ, अभी तो कई घरों का काम पड़ा है, आज तो लगता है सब जगह किरकिरी होगी।" कहते हुए वह अपना मोबाइल लेकर बाहर निकल गई।

मैं सोच रही थी कितनी सुलझी और सही सोच है इस बिना पढ़ी लिखी शांता की जो पति और उसके परिवार को बिना किसी कानूनी पचड़े मे फँसाये अपने दम पर बच्चों के भविष्य को बनाने के लिए संघर्ष कर रही है। जबकि आज कितनी ही पढ़ी–लिखी और आत्मनिर्भर महिलाएं भी हैं जो किसी वजह से पति से नहीं निभा पाईं या अपनी उंगली पर नहीं नचा पाईं वो पति को ही नहीं, दूर रह रहे उसके परिवार को भी झूठे केस में फंसा कर प्रताड़ित कर रहीं हैं। ◆

पता : बी–502, ब्रिगेड मेट्रोपोलिस,
महादेवपुरा, बैंगलोर– 560048
मो. : 9393385447

अतीत की तलाश

❑ अनुजा

इ ''दादू चाय''! लड़का उनके सामने चाय का गिलास रख गया। वे बड़ी देर तक चाय के गिलास से निकलने वाले धुएँ को देखते रहे और अतीत की सुनहरी गलियों में भटकते रहे। जीवन के वे सुनहरे दिन आज एक सपना सा हो गए हैं। कौन जाने वो समय कभी अब लौटकर आएगा भी या नहीं! गर्दिश में तो सांत्वना की एक राह बस वो यादें ही होती हैं, जो मन को कचोटती भी हैं, संतोष भी देती हैं और सहलाती भी हैं।

रंगमंच के जिस सुनहरे सपने को उन्होंने अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया था, उसने उन्हें पुराने दीमक लगे फ्रेम की तरह भुला दिया। एक समय था, जब उन्होंने इसी रंगमंच पर अपने अभिनय के जादू से अपार भीड़ को बाँधकर रखा था। जब तालियों की गड़गड़ाहट सदैव इस नट सम्राट के आगमन का अद्‌भुत स्वागत किया करती थी। जब रंगमंच पर इस किरदार के प्रवेश करते ही जादुई खामोशी छा जाती थी। अपने एकाकीपन में आज यदि वो उसी कोलाहल और शांति के अद्‌भुत मिश्रण से बने हुए स्वागत को ढूँढते हैं तो हार जाते हैं।

उनका भव्य व्यक्तित्व और अभिनय की सजीवता दर्शकों को इस प्रकार बाँधती थी कि थोड़ी देर को वह स्वयं निःशेष हो जाता था। विशाल, सुगठित शरीर, सौम्यता के तेज से दमकता गौर वर्ण, चमकीले कुंचित केश, तीक्ष्ण नासिका, निरभ्र आकाश सी शून्य किंतु बोलती आँखें व मंद सहज स्मित से सजे अधरपुट। संतुलित, सहज, सौम्य व्यक्तित्व की शोभा को बढ़ाती हुई उनकी ब्रासलेट की बंगाली परिपाटी से बँधी धोती, सिल्क का कलफ किया कुर्ता, और उसपर ऊनी शाल। आज भी उनके व्यक्तित्व की भव्यता और गरिमा की छाप शेष है। चाहे उनके काले केशों में सफेद तारों की संख्या बढ़ती जा रही है या वार्धक्य के स्पष्ट चिन्ह उनके चेहरे पर प्रतिबिंबित हैं। चाहे आज वो ब्रासलेट की धोती और सिल्क के कलफ किए कुर्ते से सुसज्जित नहीं हैं, तो भी एक ही दृष्टि में उनका व्यक्तित्व किसी भी व्यक्ति को सहज ही बाँध सकता है।

दो पुत्रों, एक पुत्री और पत्नी के साथ अपने सुखी, समृद्ध परिवार में जीने वाले नट–सम्राट उल्लास बाबू आज अपने संसार में बिल्कुल ही एकाकी रह गए हैं। पत्नी के ढांढस बंधाने वाले

सहयोग ने पिछले ही वर्ष उनका साथ छोड़ दिया था। पुत्री अपने जीवन में रमी थी। पुत्र व पुत्रवधुएँ अपनी व्यस्तताओं में बँधे थे। कड़े अनुशासन और अपनी व्यस्त दिनचर्या में लगे पोते–पोतियाँ शायद ही कभी अपने दादा जी के साथ खेलने का अवसर पाते रहे हों। नाट्य समाज ने उनकी तमाम उपलब्धियों के साथ उन्हें अनुपयुक्त जानकार भुला दिया था। बस कमरे में रखी चमकती हुई अनगिनत ट्राफियाँ ही इस 'नट–सम्राट' की उपाधि व उपलब्धियों की याद दिलाती थीं। शायद वे नए समय से अपने को जोड़ नहीं पाए। इसीलिए हवेली जैसे विशाल नीड़ और अभिनय की अतल गहराइयों में न रम सके और अभिनय के समस्त पड़ावों को पार करते हुए आज बिल्कुल निस्संग, बिल्कुल एकाकी बैठे थे। अपना सहारा अपनी ही कुंठा, अपनी ही विवशता और अपना ही आक्रोश थे।

''लल्लू, ये रहे चाय के पैसे!'' पैसे प्लेट में रखकर उन्होंने कुर्सी की पीठ पर टँगी अपनी छड़ी उठाई और धीरे–धीरे बाहर चले गए। निरुद्देश्य से मानो अपनी ही दुनिया में डूबे हुए वे चले जा रहे थे कि एक गाड़ी उनके पास आकर रुकी। वे हल्का सा चौंककर रुके, और प्रश्नवाचक दृष्टि से उधर देखा। गाड़ी चालक ने उन्हें प्रणाम किया। अपरिचय का भाव उनकी दृष्टि में झलक उठा। वो एक लड़की थी–अपरिचित। हाथ में कैमरा, एक बैग और एक पर्स। करीने से कटे बालों को झटका देते हुए उसने आँखों पर चढ़ा रंगीन चश्मा उतारा और व्यावसायिक मुस्कान के साथ बोली– ''मैं आकांक्षा पत्रिका से हूँ। मेरा नाम निमिषा है, आपकी अभिनय कला की जबरदस्त प्रशंसक हूँ। पिछले 14–15 बरसों से आपके नाटकों की नियमित दर्शक हूँ। गए 2 बरसों से आप नाटकों से बिल्कुल बाहर हो गए हैं। यह बात मुझे तब पता चली, जब पिछले महीने मैं बाहर से लौटी। एक–दो नाटक भी देखे इस अंतराल में, पर कोई ऐसा प्रभावशाली पात्र नहीं दिखा जो दर्शकों को बाँधकर तीन–चार घंटों के लिए बैठा सके। तभी से आपको पता ढूँढने का प्रयास कर रही हूँ। कल किसी हमदर्द से आपका पता पाकर आपका घर खोजने निकली तो लीजिए, आपसे भेंट ही हो गई।'' वह हँस पड़ी।

मुस्कुराए उल्लास बाबू– ''यह तो मेरे लिए गौरव की बात है कि तुम मेरी प्रशंसक हो, पर तुम मुझमें अभिनय की इति नहीं मान सकतीं। क्योंकि ऐसा करके तुम उन कलाकारों के परिश्रम की उपेक्षा कर रही हो, जो नई दृष्टि को लेकर, नए उत्साह के साथ मंच पर उतरे हैं। हरेक कलाकार की कुछ न कुछ विशेषता होती है। उसे नकारकर हम किसी के सही आलोचक या प्रशंसक नहीं बन सकते। खैर ! तुम बताओ, मुझसे कोई विशेष आग्रह?'' कुछ रुककर वे बोले।

''जी हाँ, काम तो कुछ विशेष ही है। पर यहाँ.....?''

''तो कल घर आ जाओ, सुबह 9 बजे।''

''जी'' निमिषा ने कहा और उनसे विदा ली।

दूसरे दिन सुबह 9 बजे निमिषा ने उनकी बैठक ने प्रवेश किया। बैठक की साज–सज्जा गृहस्वामिनी की सुरुचि–संपन्नता का परिचय दे रही थी।

''आप बैठिए, मैं उन्हें बुलाती हूँ।'' उसे बैठाने वाली महिला सहसा पर्दे के पीछे जाकर अदृश्य हो गई। निमिषा बैठक का निरीक्षण कर रही थी। नक्काशीदार लकड़ी का सोफा और चमकती हुई कुर्सियाँ स्वच्छता के प्रति गृहणी के अनुराग की विवेचना कर रही थीं। पूरे कमरे में चटख रंगों के सम्मिश्रण से बना हुआ कालीन बिछा हुआ था। शीशे की खिड़कियों से बाहर रंग–बिरंगे पुष्पों की लहराती हुई छटा दिख रही थी। छत पर लगा हुआ फानूस अचानक बल्बों की रौशनी से जगमगाकर बुझ गया तो निमिषा ने उधर देखा। 'शायद किसी बच्चे की शरारत हो' एक मुस्कान उसके होंठों तक आकर लौट गई। एक ओर कार्निस पर नटराज की सुंदर मूर्ति स्थित थी। नीचे आतिशदान में चीड़ की लकड़ियाँ जलने की प्रतीक्षा कर रही थीं। पास ही शीशे की अल्मारी में अनेक ट्राफियाँ गृहस्वामी के शानदार अतीत की कहानी सुना रही थीं।

''क्या देख रही हो? अचानक उल्लास बाबू का स्वर सुनकर वह मुड़ी ''कुछ नहीं, देख रही थी कि अतीत की चमक कैसे धुँधली पड़ती है''।

''आओ", उल्लास बाबू मुड़े ''चाय–काफी, कुछ लेना पसंद करोगी?

''हाँ, कॉफी ले लूँगी।'' फिर उल्लास बाबू को कोने में लगी इलेक्ट्रिक केतली की ओर जाते देख बोली, ''आप बनाएँगे क्या?''

''हाँ, क्यों? तुम्हें भय है कि मैं कॉफी अच्छी नहीं बनाऊँगा।'' वे हँसे।

''नहीं, मेरा मतलब था....!'' उसने बात अधूरी छोड़ दी।

''सब लोग हैं मेरे घर में, पर अपना काम मैं स्वयं करता हूँ।'' उन्होंने उसकी अधूरी बात पूरी करते हुए कहा।

''लो।'' कॉफी का कप उसे पकड़ाते हुए उन्होंने बिस्किट का डिब्बा खोला– ''बिस्किट''?

''नहीं, धन्यवाद!'' वो मुस्कुराई ''मैं आपकी ट्रॉफीज की एक तस्वीर लेना चाहती हूँ।''

''क्यों?''

''यह तो सोचा ही नहीं।'' उसने कैमरे की रील सेट की ''आप इधर आ जाइए, नटराज के साथ आपकी एक तस्वीर प्लीज।'' निमिषा ने उन्हें संकेत किया।

जैसे सर्प बीन की आवाज और सपेरे की शैली पर मुग्ध हो झूमने लगता है, उल्लास बाबू इस लड़की के प्रभाव से मंत्रमुग्ध को बैठ गए।

'आपकी पत्नी! उनके साथ भी एक तस्वीर लेना चाहती हूँ।'

'उनके साथ मेरी कोई तस्वीर न ले पाओगी।' उनके गले में कुछ अटक गया।

'क्यों? निमिषा ने अचम्भे से देखा।

'वह अब नहीं हैं।'

'ओह! निमिषा मानो स्वयं ही रुक गई–'आई एम सॉरी'।

थोड़ी देर को मानो समय ठहर गया। कॉफी खत्म करके निमिषा ने विभिन्न एंगेल्स से उनकी अनेक तस्वीरें लीं। स्टडी में पढ़ते हुए, लिखते हुए, किचन में मनपसंद डिश बनाते हुए, विचारों में डूबे हुए, घूमते हुए, नाटक की विभिन्न मुद्राओं में, और पुरस्कार ग्रहण करते हुए। कुछ अतीत की तस्वीरों से उनके परिवार, पत्नी आदि का परिचय प्राप्त किया। इस सारी प्रक्रिया में उसे लगभग सारा दिन लग गया। शाम को अँधेरा ढलते ही वो चलने को उद्यत हुई– आप कल का समय मुझे दे सकते हैं?

'हाँ, हाँ क्यों नहीं! मैं भी बूढ़ा हो ही चुका हूँ। अकेले बैठा रहता हूँ। तुम्हारे साथ बातचीत में आज का दिन पता ही नहीं चला।'

'ठीक है, मैं कल आऊँगी।' वो उठी।

'वो तो ठीक है', उल्लास बाबू हँसे–'पर एक बात बताओ, शतरंज खेल लेती हो?'

'जी हाँ।'

'तो ठीक है, एक बाजी शतरंज की जमेगी और मैं तुम्हें सब बताऊँगा। और हाँ, हो सके तो इसे लिखने का कारण सोचकर आना। अन्यथा तुम्हारा यह विचार–मंथन व साक्षात्कार नीरस जीवनी के अतिरिक्त अन्य कुछ न रह जाएगा। रसिकता का पुट डाले बिना रचना लोकप्रियता नहीं प्राप्त करती!'

''आप लेखन के क्षेत्र में भी दखल रखते हैं?'' निमिषा हँसी।

'नहीं, पर रस के बिना कलाकार अधूरा होता है। इसलिए हमारा ध्यान रसों पर पूर्णतः केन्द्रित रहता है।'

दूसरे दिन बैठक से लगे बरामदे में शतरंज की बाजी और कॉफी के कप के साथ वे बातचीत करने बैठे। बरामदे में लगे क्रोटन और लटकती हुई बेलें माली के अनथक परिश्रम व परिवार की प्रकृतिप्रियता की ओर संकेत कर रही थीं। पैर आगे बढ़ाते हुए मृदु हास्य के साथ वे बोले ''पूछो, क्या जानना चाहती हो मेरे बारे में? वैसे'', कुछ रुककर उन्होंने कहा– ''मुझे समझ में नहीं आया कि मुझ बूढ़े पर किताब लिखकर तुम्हें क्या मिलेगा?''

'हाँ, मैंने सोच लिया है', उनकी चाल का जवाब देकर वह बोली–'खुशी मिलेगी मुझे कि मैं नाट्य समाज को एक बार सोचने पर विवश कर सकूँगी कि जिस महान अभिनेता को उन्होंने जीवित रहते ही भुला दिया है, उस जैसा एक भी अदाकार नहीं है उनके पास।'

एक करुण मुस्कान के साथ वे बोले–नहीं, मैं संतुष्ट हूँ।

'आपको गुस्सा नहीं आता?' निमिषा क्षुब्ध थी।

'नहीं, दुःख होता है अपनी असमर्थता और दुर्बलता पर!'

'क्या मतलब?' वह चकित थी।

'समय के साथ जो मनुष्य स्वयं को नहीं बदलता वो पिछड़ जाता है। कला की साधना करने के लिए स्वयं को अपने सुख और दुःख से निरपेक्ष रखना पड़ता है। मैं नहीं कर पाया। मेरी दुर्बलता मुझे मेरे दुःख से पराजित कर गई। इसलिए मैं भुला दिया गया। तुम अपनी बात करो।' कुछ रुककर वे बोले।

'आप थियेटर की ओर क्यों आकर्षित हुए जबकि और भी दूसरे माध्यम हैं, जो आपको शोहरत, दौलत, इज्जत सब दे सकते थे?'

'लंबी कहानी है।'

'कहिए।'

'मैं पुरनिया गाँव का रहने वाला हूँ।' उल्लास बाबू अगली चाल को भूलकर अतीत में खो गए–'मेरे पिता चार भाई थे। परिवार संपन्न था, बल्कि कहना चाहिए, रईस था।

मेरे पिता से बड़े दो भाई थे, एक छोटे भाई थे। गाँव में काफी पैतृक संपत्ति थी। परिवार के संयुक्त व परंपरावादी रहन–सहन होने के कारण हम अपने पारिवारिक नियमों को उल्लंघन नहीं कर सकते थे। दिखावे से दूर सादा जीवन जीने वाले ग्रामीणों के बीच पढ़े–लिखे और रईस होने के कारण वे स्वतः ही प्रधान बन गए थे। गाँव वालों के छोटे–मोटे झगड़ों का निपटारा करना, उत्सवों में मुख्य अतिथि की तरह शामिल होना व दुःखों में सबकी साझेदारी करना, यही हमारे परिवार की खुशहाल व सीधी–सादी जिंदगी थी। दादी पिता के बचपन में ही गुजर गई थीं व दादा जी दादी के दुःख में संन्यास ले न जाने कहाँ चले गए। अब तो शायद हों भी न असमय ही परिवार की सारी जिम्मेदारी हमारे ताऊ पर आ पड़ी। उन्होंने परिवार की बागडोर सँभाली और माता–पिता का दायित्व पूर्ण करते हुए भाइयों का पालन–पोषण करने लगे। प्राथमिक शिक्षा पूरी करके सभी भाई शहर पढ़ने को गए। वहीं थियेटर से, नाटक से उनका परिचय हुआ। दोनों छोटे भाई तो पढ़ने में व्यस्त हो गए पर मँझले ताऊ कामता प्रसाद जी, थियेटर के, नाटक के अध्ययन पर ही मानो लग गए। गाँव की नौटंकी और नाटक के मूलभूत अंतर ने ही उनको इस ओर आकर्षित किया। अपनी शिक्षा पूरी करके जब वे गाँव वापस गए तो ग्रामीण नौटंकी के कलाकारों से नाटक करने का प्रस्ताव रखा। उनके प्रयासों से नाटक गाँव की चौपाल पर खेला जाने लगा। वे स्वयं भी इसमें भाग लेते और साथ में नाटक देखने के लिए न सिर्फ मुझे ले जाते, वरन् बाल–पात्रों के अभिनय में भी शामिल करते।

''आप!'' निमिषा ने टोका– आपके पिता तो पढ़ रहे थे शहर में!

''हाँ, पर हमारे यहाँ गाँव में विवाह कम उम्र में ही हो जाते हैं। मेरे पिता का विवाह भी 14–15 बरस की आयु में हो गया था। माँ गाँव में थीं। पिता शहर में पढ़ते थे। मैं अकेला बेटा था तीनों भाइयों में। चाचा ने अब तक विवाह नहीं किया था। मँझले ताऊ के दो बेटियाँ थीं। बड़े ताऊ ने अलगाव के डर से कभी विवाह नहीं किया। अतः तब मैं ही परिवार का एकमात्र पुत्र था। नाटकों में इस सक्रिय योगदान के कारण मेरा रुझान नाटकों की ओर बढ़ा। किंतु गाँव का परिवेश एक परिवार सा होता है। अतः उसमें किए गए अभिनय पर किसी को आपत्ति नहीं थी। पर कॉलेज से निकलकर जब मैंने एन. एस.डी. में प्रवेश लेने की बात कही तो घर में कड़ा विरोध हुआ। माँ ने मुझसे बात करनी बंद कर दी। पिता ने बहुत फटकारा ''भांडों की तरह सबके सामने नाचने–गाने वाले कुल के नहीं हैं हम। नाक कटवाने का काम मत करो। मैंने तो पहले ही मना किया था कि इसे शहर मत भेजो। इसके लक्षण ठीक नहीं हैं। कौन संस्कारी परिवार इसे अपनी बेटी देगा? पूरे कुल का नाम डुबोएगा। बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल आदि–आदि। और भी न जाने कितनी उक्तियों, कहावतों की चाशनी मिलाकर मुझे डाँटा गया, फटकारा गया, किंतु मैं टस से मस नहीं हुआ। फिर इकलौता पुत्र होने का फायदा तो मुझे मिलेगा ही, यह दृढ़ विश्वास भी था। और हुआ भी यही। बड़े ताऊ मुझे कभी दुःखी नहीं देख सकते थे, यद्यपि कि अनुशासन के मामले में वे बड़े सख़्त थे। उन्होंने पिता से कहा–'कृष्णा, इसपर इतना तो अधिकार मेरा भी बनता ही है कि मैं भी इसके बारे में कोई निर्णय ले सकूँ।'

''दादा'', मेरे पिता शांत क्रोध के साथ बोले– ''बेटा आपका ही है तो भी मैं आपको इस विषय में इसका पक्ष नहीं लेने दूँगा। अगर यह गया तो मैं संपत्ति से इसे बेदखल कर दूँगा। ट्रस्ट बना दूँगा पर एक कौड़ी भी इसे नहीं लेने दूँगा।''

''दादा, अकेला लड़का है। यह भी बाहर निकल गया तो घर कौन सँभालेगा?'' माँ भी घूँघट की ओट से बोली।

''बेटा, चढ़ती हुई नदी और जवानी के वेग को बाँधा नहीं जा सकता। बच्चा है, खून गरम है, कुछ दिन अपने मन की कर लेने दो, जहाँ नून, तेल, लकड़ी में जुटा, खुद ही लौट आएगा। यों बाँधोगी तो अगर भाग गया तो कैसे लौट के आयेगा?'' कुछ रुककर पिता से बोले– मैंने ये बाल धूप में नहीं सफेद किए हैं कृष्णा, मेरा विश्वास मानो, बबुआ लौट आएगा।''

''बबुआ???' निमिषा ने टोका।

''मेरा बचपन का नाम था। बस ताऊ की इस सिफारिश से मैंने एन.एस.डी. ज्वाइन की और अभिनय के क्षेत्र में उत्तर गया। 'एक और अपूर्व' और 'टूटते किनारे' इसी के आस–पास के नाटक हैं। बस, इसी तरह नाटकों से जुड़ गया।'' वे चुप हो गए।

''लेकिन आपके ताऊ के उस विश्वास का क्या हुआ जिस पर उन्होंने आपको अनुमति दी थी एन.एस.डी. में प्रवेश लेने की?'' निमिषा ने कुछ रुककर पूछा।

हँस पड़े उल्लास बाबू। शायद अतीत के किसी सुरम्य स्मृति स्थली से जुड़ गए थे ''इसका भी बड़ा प्रयास किया गया।

नून, तेल, लकड़ी में फँसाने की व्यवस्था की गई लेकिन परिंदों के पर आज तक कोई बाँधकर नहीं रख सका है।''

''कैसे?'' निमिषा उत्सुक हो उठी।

''हाँ, यह भी एक कहानी ही है।'' उन्होंने एक गहरी साँस ली ''एक छुट्टी में जब मैं घर लौटा तो देखा घर में अपार उत्सव की तैयारियाँ हैं। पूछा, तो पता लगा, मेरा विवाह तय कर दिया गया है। यह तो सौभाग्य कि मेरी पत्नी बड़ी योग्य थी। पढ़ी–लिखी व अध्ययनशील थी, समझदार व मेरी रुचि में सहयोग करने वाली थी। बस, मैं उसको लेकर शहर आ गया। मेरा और चाचा का विवाह एक साथ हुआ था। उनकी पत्नी, मेरी माँ व ताई वहीं रहीं। बस मैं ही शहर का बाशिंदा हो गया। उन दिनों नौकरी मिलने में अब सी दिक्कतें नहीं आती थीं। मुझे एक अच्छी सी कंपनी में नौकरी मिल गई। तनख्वाह अच्छी थी। घर भी बनवा लिया और आराम से जिंदगी कटने लगी। मन, लेकिन बहुत बेचैन था। ऐसा लगता था कि जो कुछ करने का निश्चय लेकर आया था, उससे कहीं कुछ छूट रहा हूँ। बस, पत्नी से बिना कुछ कहे एक दिन घर व नौकरी छोड़कर चला गया। तब मेरा बड़ा बेटा व बेटी थे। वैसे तो मेरी पत्नी बहुत धैर्यवाली थी पर एक माह तक जब कोई सूचना नहीं मिली तो वह परेशान हुई। उसने गाँव खबर भेजी। माँ–बाबू जी आए। उसे गाँव वापस चलने को कहा, बहुत मनाया, पर उसने मना कर दिया। एक हायर सेकेंडरी स्कूल में नौकरी कर ली और बच्चों का पालन–पोषण करने लगी।

इधर मैं सोचता रहा, भटकता रहा, कहीं मन को शांति नहीं मिली। आत्म–चिंतन की प्रक्रिया से पाया कि मन के कलाकार की भूख मिटाए बिना शांति नहीं मिलेगी। बस, मंच पर आ गया। मंच से जुड़कर ही सच में मन को शांति मिली। वापस घर लौटा, तकरीबन तीन महीनों के बाद। इतने दिन की बिछुड़न में जो कुछ सहा, देखा था, सब कहते–सुनते कुछ और दिन बीते। हमारे बीच समझौता हुआ। पत्नी ने कहा कि मैं कहीं न जाऊँ। यहीं रहकर नाटकों और मंच से जुड़ा रहूँ। परिवार की फिक्र करने की मुझे जरूरत नहीं, वह अपनी आय से घर चला लेगी। सच तो यह है कि मेरी सफलता के मूल में मेरी पत्नी का त्याग, कर्मठता, विद्वत्ता व समझदारी ही है, जिसने मुझे 'नट–सम्राट' की उपाधि तक पहुँचाया। संघर्ष के जिस भयावह रेगिस्तान से मैं गुजरा हूँ, उसकी निराशाओं और परेशानियों से मैं टूट गया होता पर मेरी पत्नी की सहिष्णुता और साहस से ही आज मैं यहाँ हूँ।''

''अर्थात् आप मानते हैं कि हर सफल पुरुष के पीछे एक स्त्री होती है।'' निमिषा ने पूछा।

''हाँ, निस्संदेह! अन्यथा मैं तो हारकर जीवन से समझौता कर लेता और कहीं कलम घिसकर चार पैसे कमाये होते''–अपने प्रवाह को उन्होंने नहीं तोड़ा ''स्त्री सर्वसहा धरित्री ही नहीं होती बेटा, वह तो वो पायदान भी है हमारे समाज में, जिसपर पाँव पोंछकर हम अपने पाँवों को स्वच्छ, सुंदर और आकर्षक बनाते हैं। किंतु मेरी पत्नी इन सबसे अलग कुछ अलग व्यक्तित्व की थी। दृढ़ता, कर्मठता, क्षमा, करुणा, दया, उदारता के अद्भुत मिश्रण से बनी थी वह। उसने मुझे समस्त पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त किया। स्वयं काम किया और मुझे कला के लिए समर्पित होने की प्रेरणा दी। वह एक अद्भुत समीक्षक व आलोचक भी थी। मेरे काम की अच्छाइयों–बुराइयों की समीक्षा करके उन्हें बेहतर बनाने के तरीके बताती और....!''

''कभी आपका अहं नहीं टकराया उनकी इस समीक्षा से?'' निमिषा ने पूछा।

एक क्षण को सोच में पड़ गए उल्लास बाबू, फिर बोले–निमिषा, क्या खयाल है यदि इस प्रश्न का उत्तर मैं विचारकर दूँ?''

''हाँ, बेशक,'' वो मुस्कुराई ''बात बनाने की तो नहीं सोच रहे हैं?''

''अरे नहीं'', वे हँसे–''इस उम्र में बातें बनाऊँगा, झूठ बोलूँगा तो ईश्वर को क्या मुँह दिखाऊँगा? खैर! तीन बज रहा है। कॉफी पिओगी?'' वे उठे।

''हाँ, पर इस बार मैं बनाऊँगी।''

''ठीक है।'' वे दोनों अंदर आए।

''आपकी उम्र कितनी होगी?'' कॉफी बनाते हुए निमिषा ने पूछा।

''मेरी''! वे कुछ हिसाब लगाने लगे। कुछ देर बाद बोले–''सड़सठ–अड़सठ (67–68) के आस–पास होगी।''

''अरे'' निमिषा ने कप देते हुए कहा– ''इतने के तो नहीं लगते आप।''

ठहाका लगाकर हँस पड़े इस बार उल्लास बाबू–''गाँव की शुद्ध हवा में साँसें ली हैं। विशुद्ध दूध–दही का सेवन किया है। जीवन और आत्मा की तरह शरीर भी पौष्टिक, स्वादिष्ट, निश्छल और संयमित खुराक से बना है, इसीलिए।''

''हाँ, पर गाँव की वैचारिक संकीर्णता और रूढ़िवादिता से मुक्त थी वह। समय के बहाव में कैसे सुरक्षित निकलना है, यह वह भली–भाँति जानती समझती थी।'' इसके बाद वे दोनों ही मौन हो गए। काफी देर बाद इस मौन को उल्लास बाबू ने ही तोड़ा ''यह कहना कि कभी भी मेरा अहं नहीं टकराया, गलत होगा, पर यह अक्सर या बहुत बार हुआ हो, यह कहना भी गलत होगा। शुरू में हुआ, पर धीरे–धीरे अनुभव के साथ यह साथ ही जाने क्यों जीवन की समझ कुछ इस तरह पैठ गई हममें कि इस समीक्षा को मैं अहंकार की दृष्टि से नहीं सका और शायद यह उसकी समीक्षा शैली का भी प्रभाव था कि कमी सुधर भी जाती और आत्महीनता भी नहीं महसूस होती थी। हमेशा ही जब मैं कभी कमजोर पड़ने लगा, एक मजबूत तने की तरह उसने मुझे सहारा दिया, पल्लवित और पोषित किया। माँ, बाबू, ताऊ की मृत्यु हो, बच्चों की बीमारी हो या आर्थिक परेशानी, इस सबसे वो मुझे बचाकर यों निकाल लाई, जैसे माँ बच्चे को घनघोर वर्षा में भीगकर अपनी स्नेहछाया में छुपाकर निकाल लाती है। इस मकान के शेष अधबने हिस्से को पूराकर घर बनाने में जब उसके पसीने की बूँदें बहीं, तब भी मैं टूटा कि उसके लिए मैंने कुछ नहीं किया। जो मुझे करना चाहिए था, वह उसने किया। पर उसने तब भी मुझे यही कहकर सहारा दिया, बल दिया कि 'तुम्हीं ने तो बनाया है सब। मूलतः प्रेरणा तो तुम्हारी ही है।' पर मैं जानता हूँ कि मैं नहीं उसकी आत्मशक्ति ही मेरी प्रेरणा थी। मेरे बच्चे उसी के सुसंस्कारों और अनथक परिश्रम के कारण आज, उन मुकामों तक पहुँच सके हैं, जहाँ वे हैं। अपनी माँ के व्यक्तित्व की पूर्ण छाप है उन पर। संघर्ष के कठिन दौर में साहस, लगन और परिश्रम के सहारे ही वे उस स्थान को पा सके, जो सामाजिक दृष्टि से इज्जत का स्थान कहा जा सकता है। घर के प्रत्येक संघर्ष को अपना जानकर जो वे अपना सके और बिना डरे या दुःखी हुए वे जो इससे सहजता से निकल सके, यह उनकी माँ की शिक्षा और परिवार के प्रति लोकतांत्रिक दृष्टिकोण के कारण ही संभव हो सका। परिवार की सारी जिम्मेदारियों में उसने मेरी व अपनी दोनों की भूमिका एक साथ निभाई। सारे परिवार को एक सूत्र में बाँधकर एकाकी ही समस्त दायित्वों को वहन करने की जो खूबी उसके अंदर थी, वो बहुत कम लोगों में देखने को आती है।'' वे एक गहरी साँस खींचकर चुप हो गए।

''मतलब कि वे एक धुरी थीं, जिसके चारों ओर आपका परिवार जब तक घूमता रहेगा, बिखरेगा नहीं।'' चुप्पी को तोड़ते हुए निमिषा ने पूछा।

''निश्चय ही।''

''आपने फिर कभी कहीं काम नहीं किया?''

''नहीं, ऐसा नहीं है। एक टाइप स्कूल में कुछ समय काम किया पर वह बहुत दिनों तक चल नहीं सका।'' और इसके बाद एक गहरा सन्नाटा पसर गया वहाँ। सब अपने में डूबा हुआ, अपने से जुड़ा हुआ, मानो भित्तियाँ ही हों और कुछ नहीं। बस उनके ही सरकने की आवाज सुनाई पड़ रही थी। कितना ही समय ऐसे बीत गया। अचानक ही पूर्वी कोने में लगी नीम पर कोई पक्षी बोला तो जैसे वे चौंककर जागे ''अरे, पाँच बज गया!''

''आपने कैसे जाना?''

''ये जो तूती है न, यह ठीक पाँच बजे रोज इसी नीम से बोलती है।''

''तूती?'' निमिषा ने पूछा

''यह पक्षी, इसका नाम मैंने तूती रख दिया है। मालूम नहीं कौन सा पक्षी है।'' मुस्कुराये वे।

''ओह!'' निमिषा हँसी दिखाई पड़ती है यहाँ से?''

''दिखाई तो पड़ती है पर अब तक उड़ गई होगी। एक बार पुकारकर उड़ जाती है।''

''अच्छा, आपने नाटक को क्यों छोड़ दिया?'' निमिषा ने कुछ क्षणों के बाद पूछा।

''अँ'' मानो अपनी खामोशी से बातें करते हुए वे जगे ''इसकी वजह कोई एक तो हो सकती है, पर जहाँ तक मैं समझता हूँ सिर्फ एक ही नहीं है।''

''मसलन? निमिषा ने पूछा– ''कौन–कौन सी वजहें हैं?''

''एक तो यही कि मैं आए हुए समय और उसकी जरूरतों के साथ नहीं जी सका। हमारे लिए मंच एक कर्मक्षेत्र था, एक यज्ञभूमि, जिसमें अपना सबकुछ होम करके उसे संतोष को पाया जाता था जो हमारे लिए यज्ञाहुति के समान संसार के प्रत्येक धन से अधिक मूल्यवान होता था। अभिव्यक्ति की एक छटपटाहट थी हमारे भीतर, जिसे शांत करने के लिए हमने मंच को चुना था। आज का कलाकार इस प्यास के लिए नाटक को नहीं चुनता। अनुशासनहीनता व स्वच्छंदता बढ़ गई है। इस माहौल से समझौता करना मुश्किल है, कम से कम मेरे लिए।''

"और खास कारण?" निमिषा ने पूछा।

"मेरी पत्नी!"

"वो कैसे? नाटकों से तो आप विवाह के पहले से जुड़े हैं।"

"हाँ, यह तो ठीक है, पर अगर वह न होती तो यह क्रम आगे बढ़ना शायद मुश्किल था। दूसरे शब्दों में वह मेरी प्रेरणा थी। यह कह सकती हो। मैं तुम्हें बता चुका हूँ यह।"

"आपको अपने किस पात्र का अभिनय सबसे ज्यादा प्रिय है?"

"नट–सम्राट नाटक में जो 'नटसम्राट' का पात्र था, वह।"

"क्यों"?

"शायद मैं उसमें अपना भविष्य देख रहा था या यह कह लो कि यह एक कलाकार का भय था, जिसे वह सब पर व्यक्त नहीं कर सकता। उसने मुझे सबसे ज्यादा छू लिया था, विशेषकर बाद वाली स्थिति ने।"

"आपने निर्देशन या लेखन में क्यों नहीं प्रयास किया?"

"एक तो मेरा रुझान अभिनय के प्रति ही अधिक था, दूसरे मेरी प्रवृत्ति समझौतावादी नहीं है, कह चुका हूँ।"

"क्या आपको लगता है कि अपनी पत्नी की मृत्यु के साथ आपने नाटकों को छोड़कर उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि दी है?"

निमिषा से वे किसी ऐसे प्रश्न की उम्मीद में न थे। वे चुपचाप छत को घूरने लगे "पता नहीं।"

"क्या आपको नहीं लगता कि जिस स्थान पर आपको देखने के लिए वे सारा जीवन संघर्ष करती रहीं, आप उस स्थान तक नहीं पहुँच सके हैं।"

"शायद।" उनका स्वर जैसे कुएँ से आ रहा था।

"आप फिर से कोई शुरूआत क्यों नहीं करते?"

उल्लास बाबू का मौन ही शायद उनका उत्तर था।

"क्यों?"

"मैं महसूस करता हूँ कि मुझमें शक्ति नहीं है।"

"आपको अपनी प्रेरणा की ताकत, हिम्मत और काबिलियत पर भरोसा नहीं रहा, यही कहना चाहते हैं आप ?"

"नहीं"....! उल्लास बाबू ने प्रतिवाद करना चाहा कि तभी निमिषा ने उनकी बात काट दी "जब ऐसा नहीं है तो आप क्यों नहीं दूने उत्साह से उठ खड़े होते हैं?"

"मैं अब अभिनय से नहीं जुड़ सकूँगा।"

"मंच के अतिरिक्त आप नाटकों में कोई अन्य योगदान दें।"

उल्लास बाबू ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसे देखा, मानो पूछ रहे हों कि वह क्या कहना चाहती है? निमिषा ने भी इस दृष्टि का मतलब समझा और बोली– "एन.एस.डी. जैसी किसी संस्था का निर्माण कर इच्छुक अभ्यर्थियों के अनगढ़ अभिनय को दिशा दें। उन्हें अभिनय की बारीकियों में प्रवीण करें। गाँवों से पुनः जुड़कर नाटक की विधा को वहाँ तक पहुँचाकर ग्रामीणों की सर्जनात्मक ऊर्जा के क्षरण को रोकें। निराशा के अँधेरे से जूझकर आप कब तक जी सकेंगे अकेले? अपनी जिजीविषा को अपनी प्रेरणा, साहस, अपनी पत्नी के साथ क्यों नहीं बाँधते, जो दिगंत में व्याप्त है। निमिषा की खामोशी के साथ ही कमरा मानो स्पंदनहीन हो गया। भित्तियों का चलना रुक गया। साँसें मौन हो गई।

अगले दिन सुबह जब निमिषा आई तो वे तैयार खड़े थे–एक नए उत्साह, नए जोश के साथ। परिवार के सदस्य अचम्भित थे– बाबू जी गाँव जा रहे हैं।" उल्लास बाबू ने मुस्कुराकर निमिषा की ओर देखा– "तुमने मेरी बिखरी हुई ऊर्जा को संचित करके एक बार फिर मुझे कर्मक्षेत्र में खड़ा कर दिया। गाँव से शुरू करके अपनी नाट्य संस्था 'वर्धा' को शहर लाऊँगा। तुम मुझसे तब मिलने आओगी न!" निमिषा ने मुस्कुराकर स्वीकृति में सिर हिलाया।

"तो ठीक है, आधारशिला तुम्हीं रखो। लाओ 11/– रुपए चंदा।" वे हँसे।

"यह वर्धा नाम आपको कैसे सूझा"? रुपए उनके हाथ पर रखते हुए निमिषा ने पूछा।

"वर्धा ही तो मेरी पत्नी का नाम है, पर तुम रुपए व्यर्थ में न दोगी। चतुर हो।'

"हाँ, साथ में एक तस्वीर भी।"

"अच्छा–अच्छा, ले लो।" उल्लास बाबू जोर से हँसे और तेज कदमों से चलते हुए निकलकर गाड़ी में बैठ गए, नई मंजिल की तलाश में। ◆

पता : 43/43 बैग, लाल जी, नादान महल रोड, लखनऊ
मो. : 9453031216

कंटीला सुख

❑ पारुल हर्ष बंसल

चहुँ ओर बसंती आभा छिटकी पड़ी थी, वह फूले नहीं समां रही थी, रंग–बिरंगी भीनी–सी चादर ओढ़ वसुंधरा लजा रही थी। उसके हया का रंग फूलों ने चूसा तो वो और मदमस्त हो उठे। सुंदर पुष्प और नायाब लगने लगे। फिजा और भी सुवासित हो उठी। जिसे प्रकृति ने जैसा बनाया वह वैसा ही होकर अतरंगी हो उठा।

सुंदर–सुंदर गमलों में प्यारे–प्यारे गुलाब के फूलों को देख राहुल अचानक सरिता से पूछ उठा– ''कि मां सभी फूल एक ही आकार के क्यों नहीं... कुछ की पत्तियां झड़ी जा रही है.... तो कुछ आकार में भी भिन्न है.... जबकि एक ही गमले में लगे हैं।''

राहुल के इस सवाल ने सरिता के ह्रदय की सरिता में उफान पैदा कर दिया। क्योंकि राहुल ने अपनी उम्र के हिसाब से अधिक परिपक्व प्रश्न जो दाग दिया था।

अब वह इस नादान को कैसे समझाएं कि माली तो सबको एक जैसा खाद–पानी देता है, कुदरत की ओर से ही ऐसी नाइंसाफी है।

माँ बताओ ना .....बताओ ना.....

राहुल ने सरिता की साड़ी का पल्लू खींचते हुए कहा..........

सरिता अपने घुटने के बल बैठकर राहुल के सिर पर हाथ फेरते हुए बोली– ''जैसे तुम दोनों भाई आकार, अक्ल–शक्ल में भिन्न हो, उसी तरह यह सब प्रकृति की संतानें हैं और हमें कुदरत की ओर से मिली वह अनमोल नियामतें है, जिससे उसने हमें नवाजा है, इसलिए हमारा फर्ज है, अब हम इनकी देखरेख करें।''

अरे ....! क्या सारा ज्ञान आज ही लुटा देना है, इन जाहिलों पर...

एक तीखी तमतमाती आवाज गोली की तरह सरिता के कानों में पड़ी। जल्दी से उठने की कोशिश के चक्कर में पैर धोती में उलझा और ठोकर लगी।

सरिता सीधे बरामदे में खड़े छेदीलाल की ओर ऐसे दौड़ी, जैसे एक पल भी देर हो गई तो फौरन फांसी की सजा सुना दी जाएगी।

जी कहिए....और सर झुकाकर दासी की भांति खड़ी हो गई...

कहिए की बच्ची– ''मेरे नाश्ते का क्या हुआ? मेरा पेट तेरे ज्ञान से नहीं भरता,'' जी बस अभी लगाती हूं ''काम की ना काज की सौ मन अनाज की तू मेरी कोई भी भूख शांत नहीं कर सकती... दुश्मन कहीं की... न जाने कौन सा मनहूस दिन था जो मेरे पल्ले पड़ गई....

अब खड़ी क्या है... यहाँ मेरी आंखों से निकलते अंगारों पर रोटी सेकने का इरादा है।'' सिर झुकाए सरिता रसोई की ओर कदम बढ़ाती चली गई, तभी वहां जाकर जो देखती है, उसकी जान गले में आकर अटक जाती है, कि छोटा नवीन सफेद भूत बना हुआ है, चारों ओर सब्जियाँ, बर्तन इस कदर बिखरे हैं ....कि वहां पांव तक रखने की जगह नहीं...

इधर छेदीलाल का गुस्सा सातवें आसमान पर बैठकर घोड़े दौड़ा रहा है। तुरंत ही नाश्ता ना मिला तो ज्वालामुखी का विस्फोट निश्चित है। उसने आव देखा न ताव... तुरंत ही दो मठरी पर अचार लगाकर, एक गिलास छाछ के साथ छेदीलाल को नाश्ता दिया...यह कहते हुए कि आज गैस खत्म हो गई है। सो गर्म कलेवा नहीं बन पाएगा।

छेदीलाल के पेट में भूख का उबाल जोरों पर था, कुछ ना बोला और चुपचाप ठूंस लिया। सरिता वहाँ से दबे पैर निकल आई और नवीन को नहला–धुलाकर साफ किया और महरी को रसोई साफ करने का आदेश देकर, अपने कमरे में आ गई और जैसे ही पलंग पर टेक लगाकर बैठी, तो पुरानी यादों के बवंडर में डूबती चली गई ....नवीन जब गर्भ में आया उसने वह दिन किस कदर गुजारे.....

छेदीलाल ने कभी भी बिस्तर पर उसकी उस हालत में भी तरस नहीं खाया। उसे अपनी दिनचर्या में किसी भी प्रकार के फेरबदल से सख़्त नफरत थी या यूँ कहें कि वह बिल्कुल जीता–जागता तानाशाह था।

इस कारण सरिता हमेशा मानसिक दबाव में रहती, जिसका असर कोख में पल रहे बच्चे पर पड़ा और फलस्वरुप नवीन एक मानसिक रूप से कमजोर, विक्षिप्त बच्चे के रूप में पैदा हुआ. अब इसका भी सारा दोष सरिता के मत्थे मढ़ा जाता रहा कि कैसी औलाद को जन्म दिया है। अब इन बेवकूफ लोगों को कौन समझाए कि इस तरह के विकृत बच्चे का जन्म सिर्फ माँ पर ही निर्भर नहीं करता। उसे मिलने वाले वातावरण पर भी पूरी तरह निर्भर करता है। नवीन देखने में कुबड़ा सा लगता, गाल पर एक मोटा सा मस्सा था....जिसे आते–जाते हर कोई ऐंठ देता था। गाल पर मक्खी बैठी है.... ऐसा कहकर एक–दो तमाचा उसके गाल पर रसीद कर अपना हाथ साफ करने से कोई नहीं चूकता।

इस कारण नवीन खिसियाया सा रहता। बुद्धि कम थी इसलिए पलटकर कोई जवाब नहीं दे पाता। शरीर तो षदिन दूना रात चौगुनाष बढ़ रहा था।...पर बुद्धि ने तो मुंह फेर लिया था। ऐसा लगता है जब भगवान बुद्धि बांट रहे थे, तब नवीन छलनी लेकर खड़ा था।

उससे जो भी काम कहा जाता, फौरन करने को राजी हो जाता ....अब चाहे वह झाड़ू लगाना हो या बर्तन साफ करना, बाजार का काम हो या घर का कोई भी काम... उसे भले–बुरे की समझ ही नहीं थी, किंतु इस सब पर सरिता बहुत खीझाती थी, कि लड़के को ''कोल्हू का बैल'' समझ रखा है सबने..........

इस बात पर छेदीलाल दहाड़ता कि यह लड़का ''लीपने का ना पोतने का'' तो तू क्या उसे सिंहासन पर बैठाकर आरती उतारना चाहती है।

हूहहह.....

सरिता मन ही मन घुटने के सिवा और कर ही क्या सकती थी। तमाम डॉक्टर, वैद्य, हकीमों के चक्कर नवीन के साथ जा–जाकर काट चुकी थी, किंतु कोई नतीजा हाथ ना लगा। पंडित, ओझा, तांत्रिक सभी कुछ आजमा कर देख चुकी थी, चारों ओर से निराशा ही हाथ लगी। उसने सब कुछ ईश्वर के भरोसे छोड़ दिया और बस उसकी सलामती की दुआ करती।

समय अपनी निर्बाध गति से चलता रहा। वक्त के साथ राहुल विवाह योग्य हो गया, दिन–रात सरिता भी अपनी धुरी पर घूमती रही और दिन, महीने, साल गुजरते गए, पहले राहुल का विवाह किया और गुणी बहू का घर में पदार्पण हुआ।

राहुल की बहू मालिनी सुंदर और कुशल ग्रहिणी थी। उसने आते ही सारा घर अच्छे से संभाल लिया। उसे भी बहुत बुरा लगता, जब घर के लोग नवीन के साथ दुर्व्यवहार करते। वह हर बात में अपनी सास सरिता की हां में हाँ मिलाती। मन करता तो कभी–कभी नवीन के साथ सांप सीढ़ी, कैरम आदि खेलती और सदा उसे एक छोटे बालक की दृष्टि से देखती।

सरिता दिन पर दिन उम्र से पहले ही बुढ़ापे की सीढ़ी चढ़ने लगी, जबकि छेदीलाल की कामेच्छाएं दिन–रात बढ़ने लगीं, उसकी हालत धोबी का कुत्ता घर का ना घाट का, जैसी बना कर रख दी थी।

हालांकि राहुल और नवीन में उम्र का फासला सिर्फ डेढ़ वर्ष का ही था, समय तो नवीन के विवाह का भी हो चुका था, परंतु सरिता कभी भी किसी पराई लड़की को अंधे कुएं में झौंकने की बात सोच तक नहीं सकती थी। वह कहती नवीन कभी भी विवाह योग्य नहीं हो पाएगा। यह औरों से भिन्न है, उसका विकास धीमा है, किंतु छेदीलाल तो अब नवीन का विवाह करने को आमादा था।

कहता.... क्या कहेंगे बिरादरी वाले कि लड़के का ब्याह नहीं कर सकते, तो फिर इतनी धन–दौलत किस काम की, हमारी शान में तो बट्टा ही लग जाएगा।

अब किसको पता था कि नवीन के विवाह की आड़ में छेदी के मन में कौन सा बीज फूट रहा है, क्या षड्यंत्र चल रहा है..... गरीब से गरीब घर की लड़की से विवाह कराने को तैयार बैठा था...क्योंकि नवीन जैसे कम अक्ल वाले लड़के को कोई भी धनी अपनी लड़की क्यों ब्याहेगा। इसलिए किसी भी गरीब कन्या का वरण करने को वह तैयार था। चाहे वह एक जोड़ी कपड़े में ही ब्याह कर आ जाए। दान–दहेज की तो कोई बात ही नहीं थी।

इस कारण सरिता हमेशा मानसिक दबाव में रहती, जिसका असर कोख में पल रहे बच्चे पर पड़ा और फलस्वरूप नवीन एक मानसिक रूप से कमजोर, विक्षिप्त बच्चे के रूप में पैदा हुआ. अब इसका भी सारा दोष सरिता के मत्थे मढ़ा जाता रहा कि कैसी औलाद को जन्म दिया है। अब इन बेवकूफ लोगों को कौन समझाए कि इस तरह के विकृत बच्चे का जन्म सिर्फ माँ पर ही निर्भर नहीं करता। उसे मिलने वाले वातावरण पर भी पूरी तरह निर्भर करता है। नवीन देखने में कुबड़ा सा लगता, गाल पर एक मोटा सा मस्सा था....जिसे आते–जाते हर कोई ऐंठ देता था। गाल पर मक्खी बैठी है.... ऐसा कहकर एक–दो तमाचा उसके गाल पर रसीद कर अपना हाथ साफ करने से कोई नहीं चूकता।

फिर भी जब चारों ओर से हार मान ली, तब कहीं जाकर नवीन का विवाह घर में काम करने वाली गंगूबाई की लड़की सीमा से करने को सोचने लगा।

गंगूबाई घर के सभी छोटे बड़े काम करती, अब चाहे वह नवीन की देखरेख हो या खाना पकाने में मदद करना, जब कभी वह खुद बीमार हो जाती, तो सरिता की मदद के लिए अपनी बेटी सीमा को भेज देती। सीमा यूँ तो सिर्फ आठवीं पास थी, पर लंबे समय से बड़े घरों में माँ के साथ काम करते–करते तहजीब भी सीख गई थी।

सभी से अदब से बात करना, धीमा स्वर, नीची निगाहें, वगैरह–वगैरह ....

देखने में सुंदर, लंबी और पतली, किसी को भी अपनी और आकर्षित कर ले। उसका यौवन चूसने को जिधर देखो उधर ना जाने कितने ही लोग आहें भरते नजर आ जाते। उसको आते–जाते देखते तो एकटक नजर नहीं हटा पाते।

कुछ ऐसा ही हाल हवेली में भी था। एक दिन अचानक गंगूबाई ने छेदी के मन की बात जान ली और गंगूबाई के इस प्रस्ताव ने छेदीलाल की जुबान पर जैसे शक्कर घोल दिया और उसने बिना किसी की मर्जी जाने फट से हाँ कर दी और रिश्ता स्वीकार कर लिया।

यह जब सरिता को पता लगा तो उसे सीमा की चिंता सताने लगी कि किसी गरीब की बेटी को अपना मतलब सिद्ध करने के लिए क्यों सूली पर चढ़ाया जाए। वह चाह कर भी विरोध दर्ज करने की स्थिति में नहीं थी। वह बेचारी तो सिर्फ ईश्वर से उसके कुशल मंगल की कामना ही कर सकती थी। गंगूबाई

खुद पर इतराने लगी कि सेठानी की समधिन बन जाऊंगी। पर उसे अपनी बेटी के भविष्य की तनिक भी चिंता नहीं थी। उसे सिर्फ नजर आ रहा था तो वह था बस सुंदर बड़ी हवेली और उसके ऐशो आराम......

इन सब की आड़ में दबी नवीन की स्थिति और अंधकारमय भविष्य को जैसे जानबूझकर नजरअंदाज कर रही हो।

सीमा के विरोध करने पर उसे यह कहकर चुप करा देती है कि मेरी मेहनत पर पानी फेरने की हिम्मत भी ना करना, लड़की—नहीं तो यहीं पर गला घोटकर दाब दूंगी......

हमने इसी दिन के लिए तुझे पाल पोस कर बड़ा किया कि एक दिन इस हवेली में राज करोगी....

और माँ म म म मेरा पति.... जो किसी काम का नहीं .....

उसका क्या...? तुम्हें उस सब में अपना दिमाग चलाने की जरूरत नहीं ..... ऐसे कैसे कह सकती हो आप ...!

जब मुझे पत्नी का सुख नहीं ...तो संतान का भी सुख कैसे प्राप्त होगा ... अरे यह गज भर की लड़की... कितनी लंबी जुबान है तेरी ....चुपकर और जा अंदर ... बड़ी आई.... आज मानो गंगूबाई की आंखों में पल रहा सपना साकार होने जा रहा था ....

बरसों पहले जवानी के नशे में चूर गंगूबाई ने जब छेदी लाल के सामने प्रणय निवेदन रखा

...तो एक कामवाली कहकर उसे दुत्कार दिया था. तभी से प्रतिशोध की अग्नि में गंगूबाई भभक रही थी। उसे यकीन था कि एक दिन ऊंट पहाड़ के नीचे जरूर आएगा..... और वाकई आ गया....

अपनी औलाद की खातिर छेदी ने रिश्ता स्वीकार कर लिया ...अब गंगूबाई को घर में सम्मान मिलने लगा और उनके दिशा—निर्देशन में दूसरे नौकर काम करने लगे।

नवीन के जीवन में ब्याहनी रात आ ही गई, हालांकि वह कुछ जानता नहीं था, इस विवाह नामक चिड़िया के बारे में ...उसे तो बस नए कपड़े, नया कमरा, नया बिस्तर और नई सहेली..... बस यही लुभा रहे थे... मालिनी और सरिता ने बड़े चाव से सीमा का स्वागत सत्कार घर की छोटी बहू के रूप में किया। सीमा आंखों में अपार सपने और दिल में नए जज्बात संजोकर घर में प्रवेश करती है। स्वागत की सब विधियां पूरी होते ही नई बहू को तैयार करके नवीन के कमरे में भेज दिया जाता है। सीमा के चेहरे पर उदासी के बादल छा जाते हैं, जिस रात का हर किसी के जीवन में विशेष महत्व होता है, उसे सूनी नजर आ रही थी, फिर भी कर क्या सकती थी, चल पड़ी थी वह ऐसी शोलों से भरी डगर पर, पाने को आसमां अपना.......

...हालांकि सीमा के दिल का हाल घर में किसी से छिपा हुआ नहीं था, हर कोई बस आंखों पर ठीकरी और जुबान पर ताला लगा कर बैठा था। रोज सूरज समय पर उगता, किंतु सीमा की उम्मीद का सूरज पहले ही डूब चुका था। उसे अपने पति से शय्या सुख कभी भी प्राप्त होने वाला नहीं था, यह सब जानते हुए भी और अपनी मां की जिद को मानते हुए भी हवेली में छोटी बहू के रूप में पड़ी रहती...... दिन गुजरने लगे... फिर महीने ....

अब सरिता को चिंता सताने लगी कि नवीन का घर बार कैसे चलेगा ...उपाय कोई जानती नहीं थी... सिर्फ चिंता करने के अलावा कर ही क्या सकती थी...

सीमा का तन बदन कामाग्नि से हर पल झुलसता रहता। यह सब छेदीलाल ने भांप लिया और अपने मंसूबे में कामयाबी नजर आने लगी, फिर कुछ ही समय बाद सीमा गर्भवती हुई.... सारी हवेली में खुशी की लहर दौड़ गई और उस दिन उदास थी तो सिर्फ सरिता क्योंकि वह अपनी सौत के बेटे की दादी जो बनने जा रही थी............

पूरा वातावरण धूसर सा नजर आने लगा, गुलाब की पंखुड़ियाँ कुम्हलाकर सिकुड़ गई, पंछियों का कलरव सरिता के कानों में खटकने लगा, उसका जिया अंधेरे कुएं में डूबता चला गया..... जबकि गंगूबाई की आंखों में जीत की चमक स्पष्ट नजर आ रही थी। ◆

पता : बड़ी होली, जय—जय राम मोहल्ला, कासगंज—207123
मो. : 8273588382

विरासत की जड़ें और डिजिटल स्क्रीन

❑ पायल सोनी

अअमलतास के पीले फूलों से ढकी सड़क के किनारे बने उस दो मंजिला मकान में दोपहर की खामोशी छाने ही वाली थी कि अचानक दिवाकर जी के सब्र का बांध टूट गया।

''समर! क्या तुम्हारी यह स्क्रीन कभी बंद होगी? सुबह से दोपहर हो गई, गर्दन झुकाए बस उस डिब्बे में उंगलियां चला रहे हो। न पढ़ाई की चिंता, न घर–परिवार की सुध। तुम अपनी जड़ों से पूरी तरह कट चुके हो!''

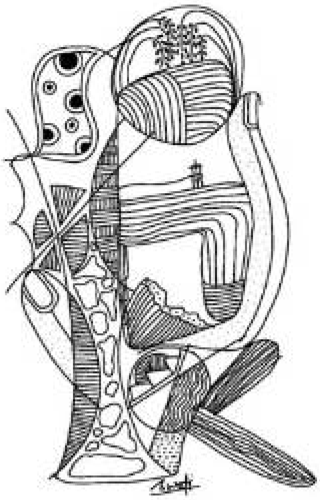

सोलह साल के समर ने एक गहरी सांस ली, बिना नजरें स्क्रीन से हटाए चिढ़कर कहा, ''ओह पापा, प्लीज! आप हर बात को संस्कृति और जड़ों से जोड़ना बंद कीजिए। मैं बस अपने दोस्तों से चैट कर रहा हूँ और एक गेम खेल रहा हूँ। आजकल की दुनिया ऐसी ही है।''

दिवाकर जी का दिल बैठ गया। वे एक सरकारी स्कूल के प्रधानाचार्य थे और भारतीय संस्कृति, इतिहास तथा संस्कारों को जीवन का असली आधार मानते थे। उन्हें समर की कम होती पढ़ाई से ज्यादा इस बात की चिंता थी कि उनका इकलौता बेटा एक ऐसे आभासी संसार (वर्चुअल वर्ल्ड) में खोता जा रहा था, जहाँ न तो रिश्तों की गर्माहट थी और न ही अपनी मिट्टी की महक।

अगले ही हफ्ते समर की गर्मियों की छुट्टियां शुरू हो गईं। समर का प्लान था कि वह पूरा महीना एसी कमरे में बैठकर वीडियो गेम्स खेलने और सोशल मीडिया स्क्रॉल करने में बिताएगा। लेकिन दिवाकर जी ने कुछ और ही सोच रखा था। उन्होंने अपनी पत्नी माधवी से सलाह की और तय किया कि इस बार समर को उसके दादा–दादी के पास, मध्यप्रदेश के एक छोटे से ऐतिहासिक गाँव 'रुद्रपुर' ले जाया जाएगा।

जब समर को यह पता चला, तो उसने आसमान सिर पर उठा लिया। ''वहाँ तो नेटवर्क भी नहीं आता होगा! मैं पूरे एक महीने बोरियत से मर जाऊँगा,'' उसने पैर पटकते हुए कहा।

दिवाकर जी ने शांत स्वर में कहा, ''बेटा, जहाँ नेटवर्क कमजोर होता है, वहीं अक्सर अपनों से संबंध सबसे मजबूत होते हैं। तुम्हें चलना ही होगा।''

गाँव पहुँचते ही समर की आशंका सच साबित हुई। उसके फोन के सिग्नल 'नो सर्विस' दिखाने लगे। समर का चेहरा लटक गया। उसे लगा जैसे उसकी साँसें छीन ली गई हों। वह घर के बरामदे में एक खटिया पर बैठ गया और चिड़चिड़ाने लगा।

तभी उसके दादाजी, पंडित दीनानाथ जी, हाथ में पीतल का लोटा लिए मुस्कुराते हुए आए। उन्होंने समर के सिर पर हाथ रखा। समर ने झटके से सिर हटा लिया। दीनानाथ जी बुरा नहीं माने। उन्होंने कहा, ''समर बेटा, चलो तुम्हें एक जादू दिखाता हूँ।''

''मुझे कोई जादू नहीं देखना, दादाजी,'' समर ने रूखेपन से कहा।

''अरे, मोबाइल के ग्राफिक्स से बेहतर जादू है, चलकर तो देखो,'' दादाजी ने प्यार से पुचकारा।

दादाजी समर को घर के पीछे बने एक बहुत पुराने बरगद के पेड़ के पास ले गए। वह पेड़ सदियों पुराना लग रहा था, उसकी जटाएं जमीन में धंसी हुई थीं और उसकी घनी पत्तियां तपती दुपहरी में भी ठंडी छांव दे रही थीं।

दादाजी ने एक कुल्हाड़ी उठाई और बरगद की एक सूखी टहनी को काट दिया। समर देखता रहा। फिर दादाजी ने कहा, ''समर, अगर मैं इस पेड़ की सारी पत्तियां काट दूँ, तो क्या यह मर जाएगा?'' समर ने कहा, ''नहीं, पत्तियां तो फिर से उग आएंगी।'' ''और अगर मैं इसकी टहनियां काट दूँ तो?'' दादाजी ने पूछा।

''तभी यह नहीं मरेगा, कुछ समय बाद नई शाखाएं निकल आएंगी,'' समर ने भूगोल की थोड़ी–बहुत जानकारी का इस्तेमाल करते हुए कहा। ''और अगर मैं जमीन के नीचे जाकर इसकी जड़ों को काट दूँ तो?'' दादाजी की आंखें समर के चेहरे पर टिक गईं।

समर ठहर गया। उसने कहा, ''तब तो... तब तो यह पूरा पेड़ सूख कर गिर जाएगा। दोबारा कभी हरा नहीं हो पाएगा।'' दादाजी ने समर के कंधे पर हाथ रखा और बेहद गंभीर आवाज में बोले–

''यही समझाना चाह रहे थे तुम्हारे पापा, समर। यह जो मोबाइल की दुनिया है न, यह पत्तियों और शाखों जैसी है–चमकदार, बदलती हुई और अस्थायी। लेकिन हमारी संस्कृति, हमारे संस्कार, बड़ों का आदर, और किताबों से मिलने वाला ज्ञान–यह हमारी जड़ें हैं। जो बच्चा दिन भर सिर्फ स्क्रीन में खोया रहता है, वह अपनी जड़ों को पानी देना भूल जाता है। और जिस पेड़ की जड़ें सूख जाती हैं, उसे वक्त की जरा सी आंधी भी गिरा देती है।''

समर चुप था। दादाजी की बात उसके दिल में कहीं गहराई तक उतर गई थी।

अगले कुछ दिनों में समर के जीवन में एक अजीब बदलाव आया। मोबाइल काम नहीं कर रहा था, इसलिए मजबूरी में ही सही, उसने दादाजी के पुस्तकालय की धूल झाड़नी शुरू की। वहाँ उसे पंचतंत्र की कहानियों से लेकर उपनिषदों के सरल अनुवाद और भारत के महान वैज्ञानिकों (जैसे आर्यभट्ट और चरक) की जीवनियाँ मिलीं।

उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिस विज्ञान और गणित को वह आधुनिक समझता था, उसका एक बहुत बड़ा हिस्सा सदियों पहले भारत के ऋषियों ने वेदों में लिख दिया था। शाम को वह गाँव के लड़कों के साथ कबड्डी और खो–खो खेलने लगा। मोबाइल के वर्चुअल गेम्स में जो जीत उसे मिलती थी, उससे कहीं ज्यादा खुशी और असली पसीना उसे इस मिट्टी के खेल में मिल रहा था। वह रात को दादी माँ से लोक–कहानियां सुनता और उनके साथ मिलकर तुलसी के पौधे में दीया जलाना सीखता। उसे समझ आया कि भारतीय संस्कृति सिर्फ पूजा–पाठ नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ जीने की एक कला है।

उसने अपनी कक्षा की किताबों को भी नए नजरिए से देखना शुरू किया। जो इतिहास उसे पहले उबाऊ लगता था, अब उसमें उसे अपने पूर्वजों का पराक्रम दिखने लगा था। एक महीना बीत गया। शहर लौटने का दिन आ गया था। दिवाकर जी जब समर को लेने रुद्रपुर पहुँचे, तो वे अपनी आँखों पर यकीन नहीं कर पाए।

समर बरामदे में बैठकर अपनी गणित की किताब पढ़ रहा था। उसके बगल में मोबाइल रखा हुआ था, लेकिन वह बंद था। जैसे ही उसने अपने पिता को देखा, वह दौड़कर आया और मोबाइल पर रील्स देखने के बजाय, झुककर अपने पिता के पैर छुए।

दिवाकर जी की आँखें भर आईं। उन्होंने समर को गले से लगा लिया। समर ने मुस्कुराते हुए कहा, ''पापा, मुझे माफ कर दीजिए। मैं सोचता था कि मोबाइल ही पूरी दुनिया है। पर मुझे अब समझ आ गया है कि तकनीक हमारे जीवन को आसान बनाने के लिए है, हमें अपनी जड़ों से काटने के लिए नहीं। शिक्षा सिर्फ परीक्षा पास करने के लिए नहीं, बल्कि अपनी संस्कृति को समझकर एक बेहतर इंसान बनने के लिए है।''

दिवाकर जी ने समर के सिर पर हाथ रखा और कहा, ''मुझे तुम पर गर्व है, बेटा। जो बच्चा अपनी जड़ों को संभाल कर रखता है, उसे आसमान छूने से कोई नहीं रोक सकता।''

उस दिन के बाद, समर ने मोबाइल का इस्तेमाल जरूर किया, लेकिन एक गुलाम की तरह नहीं, बल्कि एक मालिक की तरह। वह अब हर दिन पढ़ाई भी करता, खेलता भी और अपनी संस्कृति की छांव में एक मजबूत बरगद के पेड़ की तरह बढ़ रहा था। ◆

पता : बी 4/23, गोमती नगर, एक्सटेंसन सेक्टर–1,
गोमती नगर, लखनऊ–226010
मो. : 8009001661

मौन पथिक

समर पाल सिंह

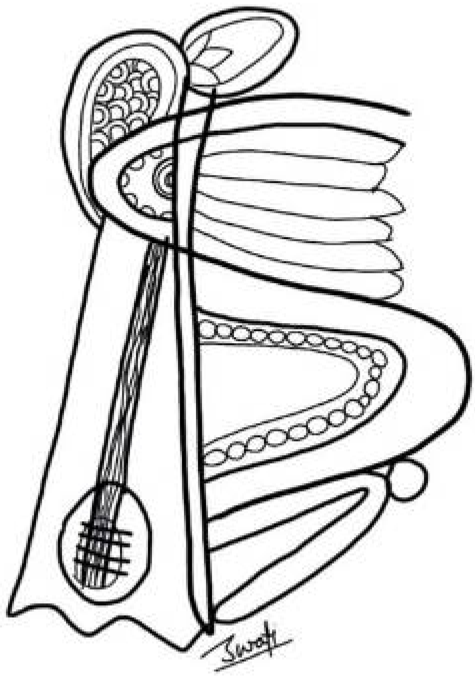

मौन पथिक हूँ चलता जाता,
बिना कहे सब सहता जाता।
सूनी राहें थकी दिशाएँ,
मन उठती दुःख की छायाएँ।
न कोई साथी न कोई स्वर,
बस सिसकियों का गूंजता घर।
छूट गया बचपन का आँगन,
रही अधूरी चाहत बनकर।
जीवन की संध्या बेला में,
खोया सब कुछ हर मेला में।
आँखें नम हैं पर मौन हूँ मैं,
व्यथा भरी हैं बेचैन हूँ मैं।
मौन पथिक नहीं बोल सका कुछ,
भीड़ में रहकर झेला सब कुछ।
हँसी की ओट में अश्रु छुपाए,
जीवन बीता हर्ष गँवाए।
रहते हो क्यों मौन पथिक तुम ?
हृदय–घातों को सहकर
क्या विकल्प है मौन साधना ?
अपनों के बंधन में रहकर।
बचपन में थे, रंगीले सपने,
माँ का आँचल सब थे अपने।
समय ने झटके प्यारे सपने,
बदरंग हुए जीवन के गहने।
यौवन आया सँग बोझ भी लाया,
संघर्षों ने हर दिन समझाया।
प्रेम भी था पर बिखर गया,

किस्मत का लिखा यूँ ही गुजर गया।
आसा थी वह, भी चली गई एक रोज चुपचाप,
हाथों में हाथ नहीं केवल साँसों का हिसाब।
बस एक तस्वीर बची है, विस्तर के पास,
भीगीं पलकें खोजती है, बीते पल की मिठास।
शरीर शिथिल हुआ तो अरमान रहे,
अपने बड़े हुए तो घर से गए।
दीवारें सुनती रहीं मेरी बात,
पर इंसान नहीं था मेरे साथ।
आँगन सूना, खिडकी रोती,
दीवारों में बस यादें होती।
अपनी यादें हुई पराई,
बची कहानी आँखों में आई।
शरीर थका है, हृदय भी भारी,
साँसें उधार की, स्मृतियाँ प्यारी।
न कोई पुकार न कोई आस,
बस, नीरसता खडी है मेरे ही पास।
साँसे बोझ सी लगती हैं अब,
हर दिन लगता कोई सजा है अब।
आखिरी पन्ना भी लिख रहा हूँ,
चुपचाप अलविदा की ओर बढ़ रहा हूँ।
संध्या की बेला, आँखें नम हैं,
कब्र के पास मेरे कदम है।
शब्दहीन पुस्तक जीवन की समेटी कैसे जाए ?
कफन साथ ले चिर निद्रा में मौन पथिक सो जाए।
सहेज कर रख दिया है किताब का आखिरी पन्ना,
जिसमें छपी है हर रोज की तमन्ना।
रिश्तों के जाल में शब्दों के अभाव में,
अपूर्ण हो रही जीवन की तमन्ना।

◆

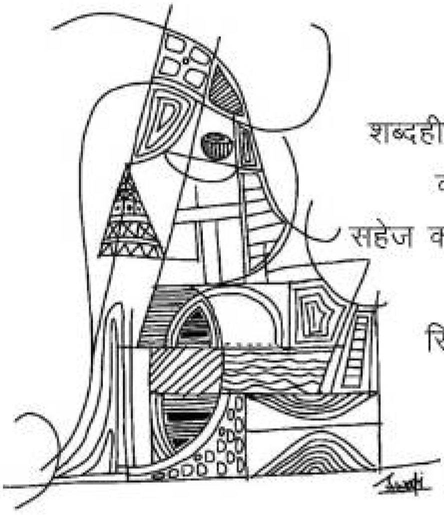

पता : पिदौरा रोड़, मारहरा शरीफ–207401, एटा
मो. : 9456037283

सांझ

रतन खंगारोत

ढलती उम्र ने, ढलते सूरज से कहा,
आ बैठ कुछ गुफ्तगू कर लें,
कुछ अपनी सुना तू,
कुछ मेरी भी सुन ले।
तेरे उगते हुए पल को
और मेरे बीते हुए कल को,
इस लंबे सफर का बड़ा आलम था,
सुहाने सपनों का पिटारा लिये
हौसलों का सफर भी सुहाना था।
तेरा बादलों में छिप जाना,
और मेरा परछाइयाँ पकड़ना,
दोनों ही खेल नादानी के थे।
तेरा जोश में जलना
और मेरा क्रोध में खो जाना,
पर मिटना तो दोनों में तय था।

कभी तू सुबह की पहली किरण बन
धरती को उम्मीद देता था,
और मैं भी अपने अरमानों से
जिंदगी को रंग देता था।

तू आकाश में चमकता रहा,
मैं रिश्तों में बिखरता रहा,
तू समय की चाल समझ गया,
मैं अपनों में ही उलझता रहा।
अब न कोई तुझसे पूछता है,
न किसी को मेरी परवाह है।
पर सोचता हूँ,
अफसोस आखिर किस बात का है?

जो मिला, वही तो जीवन था,
जो बिछड़ा, वही अनुभव था।

मुट्ठी में कैद न उम्र होगी,
न कोई पल ठहर पाएगा,
समय की इस बहती धारा में
हर चेहरा एक दिन धुँधला जाएगा।

पर कर्मों की खुशबू शायद,
कुछ देर हवाओं में रह जाए,
और प्रेम से बोले गए शब्द
किसी के दिल में घर कर जाएँ।
देखा है मैंने,
महलों को मिट्टी होते हुए,
और मिट्टी से उठते इंसानों को।
वक्त जब करवट लेता है,
तो राजा भी रेत हो जाते हैं,
और संघर्ष करने वाले लोग
इतिहास हो जाते हैं।

इसलिए ऐ सांझ!
अब शिकवा नहीं किसी अपने से,
न शिकायत है अधूरी राहों से।
जो टूटा, उसने सिखाया,
जो छूटा, उसने समझाया,
कि जीवन केवल पाने का नाम नहीं,
कभी–कभी मुस्कुराकर खोने का भी नाम है।
चल आज फिर से बैठें,

तू अपने रंग बिखेर आकाश में,
मैं अपनी यादें बिखेर दूँ शब्दों में।
तू धीरे–धीरे रात में ढल जाना,
मैं खामोशी में खुद को पढ़ लूँगा।

क्योंकि अंत हमेशा अंत नहीं होता,
हर सांझ अपने भीतर
एक नई सुबह का बीज छुपाए रखती है।
और शायद इसी उम्मीद पर
जिंदगी अब भी खूबसूरत लगती है।

मेरे आदर्श

क्या अर्पण करूं तुझे हे! माधव,
जो मानव जीवन तुमने दिया।
मेरे पापों की मैली चुनरिया पर,
कुछ सितारे शायद पुण्य के होंगे।।

यह जीवन कितना अनमोल है,
मैं मूर्ख यह समझ न पाई।
तब पिता का रूप धरकर,
गोविंद, तुमने ही राह दिखाई।।

जब जीवन की उलझन बढ़ने लगी,
मन व्याकुल और चित्त भरमाया।
तब गुरु बनकर हे माधव,
तुमने ही ज्ञान का दीप जलाया।।

मेरे आदर्श गुरुवर की वाणी,
मेरे उसूल पिता के वचन।
किसी का दिल कभी न दुखाऊँ,
न भटकाऊँ जीवन का रथ।।

सत्य, सेवा और संस्कारों से,
हर रिश्ता मैं पावन रखूँ।
दुखियों के आँसू पोंछ सकूँ,
ऐसा अपना जीवन रखूँ।।

ना अभिमान हो ज्ञान का मुझमें,
ना धन का कोई अहंकार रहे।
बस मानवता ही धर्म बने,
और प्रेम सदा व्यवहार रहे।।

यदि मेरे शब्द किसी टूटे मन में,
फिर से आशा जगा सकें।
तो समझूँगी हे मेरे माधव,
मेरे जीवन के दिन सफल रहें।।

माता–पिता का मान रखूँ मैं,
गुरुओं का सदा सम्मान करूँ।
तेरे दिखाए सच्चे पथ पर,
हर क्षण अपना जीवन धरूँ।।

यही प्रार्थना है हे कान्हा,
सदा विनम्र मेरा मन रहे।
मेरे कर्मों से जग में प्रभु,
तेरा ही सुंदर दर्शन रहे।।

कृ रतन खंगारोत
जयपुर, राजस्थान

◆

पता : जयपुर, राजस्थान

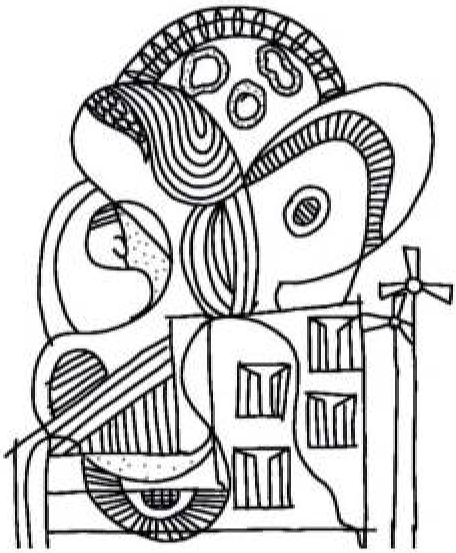

गीत का पहला चरण हूँ

अनुजा मनु

शब्द बन बहती हुई मृदभावना का निर्झरण हूं
गुनगुनाओ मैं तुम्हारे गीत का पहला चरण हूं

तुम बिन अस्तित्व का मेरे भला अस्तित्व कैसा,
प्राण तुम हो मै तो केवल देह रूपी आवरण हूं
जो सिंहासन को वचन वाणी की मर्यादा सिखाएं,
मैं मुखर्जन शब्द हूं, मैं चेतना का व्याकरण हूं

प्रेम दो चाहे मुझे तुम पीर दो इच्छा तुम्हारी,
प्रेम पथ पर अनवरत मै प्रेम का ही अनुसरण हूं
दोष कोई मुझ पर, संसार कैसे मढ़ सकेगा
जो मुझे इससे मिला है, मैं इसी का अनुकरण हूं

है प्रतिष्ठा रत नयन देहरी पर दीपक से जलाए
आपके अभिसार की रजनी को व्याकुल जागरण हूं
हर व्यवस्था में नये ढंग से, है हुआ उपयोग जिसका
राजनीतिक द्यूत क्रीड़ा का सहजता उपकरण हूं

◆

पता : 610/56, केशव नगर कॉलोनी,
सीतापुर रोड, लखनऊ–226020
मो. : 9897264466

समझावनपुर

❑ सुरेन्द्र अग्निहोत्री

लेखक डॉ. उदित नारायण पाण्डेय द्वारा लिखित ''समझावनपुर'' कहानी संग्रह हिन्दी की पहली सड़क सुरक्षा पर केन्द्रित कहानियों के रूप में भिन्न और अलग हैं कि इन कहानियों में घटना–दुर्घटना का जो चित्रण हुआ है वह एक तरह से एक रूपक की भांति देखने जैसा है।

'रफ्तार, शनिनिवारण, नशा, अपराजिता, कपिला, फेरे, मृगतृष्णा, समझावनपुर, फूल और माली, साथ ही फक्कड़ चाचा और कहानियों के साथ भी हैं। कहानी में आए पात्रों का रिश्ता उन आपसी संवादों के साथ भी है, जहां जिंदगी एक प्रतीक रूप में हमारे सामने जीवंत कारक के रूप में प्रस्तुत हो जाती है। जब कहानी का एक पात्र दूसरे से परस्पर संवाद करता है तो लगता है कि कुछ बातें सड़क पर हर पल गति और आवेग में संतुलन के महत्व से जुड़कर जीवन में संतुलन की वकालत करती हैं। जिंदगी के उतार चढ़ाव भरे रास्ते में तेज रफ्तार अनियंत्रित बच्चे को रौंद कर विकलांग बना जाता है तब समय लड़के को देखकर ठहर जाता है। घटना–दुर्घटना का दंश सारी जिंदगी ढोता है।

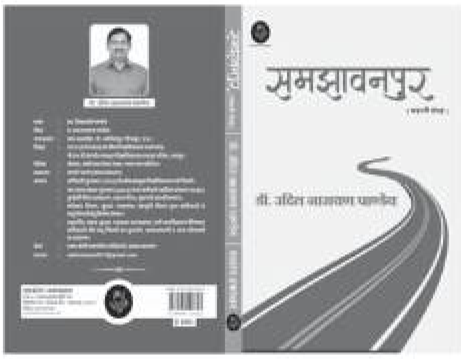

पहली कहानी 'रफ्तार', जिसमें 'राज' नामक एक लड़का है, जिसके माता–पिता अपनी इकलौती संतान की हर इच्छा पूरी करने के लिए तत्पर रहते हैं। आखिर लड़–झगड़ कर बेटा राज किशोर वय में ही एक बाइक खरीदने में सफल हो जाता है और अपने दोस्तों के साथ रोज सड़कों पर देर सबेर फर्राटा भरने का आदी हो चुका होता है। एक दिन वह सुबह अपने दोस्त के साथ तेज रफ्तार अनियंत्रित बाइक से एक स्कूल जाते बच्चे को रौंद कर भागने में सफल रहता है। कुछ अरसे बाद एक दिन वह फिर जब उसी दुर्घटना स्थल से गुजर रहा होता है, तो एक विकलांग लड़के को देखकर ठिठक जाता है। कहानी की भाषा सरल तो है ही, वाक्यों की रचना भी काफी सशक्त है, जो अपनी बात कहने का पूरा दमखम रखते हैं।

कुछ दर्द बांट लेते हैं, और कुछ दर्द हम किसी से भी नहीं बांट पाते। उस दर्द के साथ ही हमें जीना है और एक दिन ऐसे ही इस जहाँ से अपने दर्द को साथ लेकर चले जाना है। ऐसी ही कहानी है। 'डॉ. उदित नारायण पाण्डेय की कहानियों में शब्दों का चयन बोलचाल की भाषा अत्यंत सरल है। सरल शब्दों के माध्यम से पात्रों के द्वारा कथानक गढ़े गये जो चाक्षुष सुख का आनंद देते हैं। विद्वानों का मत है कि जो कहानी चाक्षुष सुख प्रदान करती है, वह कहानी कालजयी होती है।

डॉ. पांडेय द्वारा लिखित इन कहानियों में सड़क के नियमों को आत्मसात कर व्यावहारिक जीवन में उतारने पर जोर देता है तथा सड़क पर हर पल गति और आवेग में संतुलन के महत्व से जीवन में संतुलन की बात कहता है। लेखक का मानना है और तथ्यात्मक भी है, कि अधिकांश सड़क दुर्घटनाएं मानवीय गलतियों का ही प्रतिफल है, प्राकृतिक विपदाओं का योगदान तो अंश मात्र ही है, यथा –तेज गति में वाहन चालन, सड़क सुरक्षा के नियमों की अवहेलना, नशा, नींद, थकान, दुख, अवसाद आदि में ड्राइविंग, नाबालिगों का वाहन चालन, वाहन क्षमता से अधिक वाहनीय गतिविधियां, सुरक्षित सफर (व्यक्ति और वाहन दोनों) के मानकों की अनदेखी आदि आदि....! कहानियां ऐसे कथानक पर लिखी गई है, जो आमतौर से कहानी का विषय नहीं होता है। कहानी में दो विडम्बनाओं को एक साथ दिखाया गया है। यह रूपक जितना आकर्षक है, उतना ही हमें सोचने को बाध्य करता है।

लेखक ने सरल वाक्य रचना, चुटीले शब्दों और प्रवाहमय भाषा के इस्तेमाल से कहानियों को रोचक बना दिया है। वैसे तो संग्रह की ज्यादातर कहानियां अच्छी हैं। पाठक को सोचने के लिए जमीन देती हैं। ◆

पुस्तक : ''समझावनपुर''
(कहानी संग्रह)
लेखक : डॉ. उदित नारायण पाण्डेय
प्रकाशन : शतरंग प्रकाशन
एस–43, विकास दीप बिल्डिंग,
दूसरी मंजिल, स्टेशन रोड, लखनऊ–226001
मूल्य : 500

पता : ए–305, ओ.सी.आर., विधान सभा मार्ग,
लखनऊ–226001
मो. : 9415508695

लघुकथा

भरोसा

❑ डॉ. अलका जैन 'आराधना'

ड्राइंग रूम में सन्नाटे के बीच केवल फाइलों के पलटने की आवाज आ रही थी। सुरेश के सामने वकील साहब बैठे थे और मेज पर नए फ्लैट के कागजात फैले हुए थे। शहर के पॉश इलाके में यह सुरेश का पहला अपना घर होने जा रहा था, जिसकी खुशी उनके चेहरे पर साफ दिख रही थी।

वकील साहब ने चश्मा ठीक करते हुए कहा, ''सुरेश जी, सब ठीक है। बस एक सुझाव है। अगर आप यह रजिस्ट्री अपनी पत्नी के नाम पर कराते हैं तो स्टाम्प ड्यूटी और टैक्स में काफी बचत होगी। सरकार महिलाओं के नाम पर रजिस्ट्री में अच्छी छूट देती है।'' सुरेश एक पल के लिए ठिठके। उन्होंने रसोई की ओर एक तिरछी नजर डाली, जहाँ उनकी पत्नी सुधा सबके लिए चाय बना रही थी। फिर उन्होंने आवाज धीमी करते हुए वकील साहब की ओर झुककर कहा, ''बात तो आपकी सही है वकील साहब, फायदा तो है। पर... आप तो जानते ही हैं कि जमाना कितना खराब है। कल को खुदा न खास्ता कुछ अनबन हो गई या... समझ रहे हैं न आप? पत्नी के नाम प्रॉपर्टी करने में कहीं कोई रिस्क तो नहीं?''

वकील साहब के हाथ में पकड़ा पेन रुक गया। उन्होंने अपनी फाइल बंद की और सुरेश की आँखों में आँखें डालकर देखा। सुरेश को लगा कि शायद वकील साहब कानून की कोई पेचीदा बारीकी समझाने वाले हैं। पर वकील साहब ने बड़ी सहजता से कहा, ''सुरेश जी, बड़ी अजीब बात है। जिस स्त्री ने बीस साल पहले एक अनजान शहर और अनजान घर को अपना बनाने के लिए अपना भरा–पूरा मायका, अपने माता–पिता और अपना सरनेम तक छोड़ दिया, आज आपको उसी पर भरोसा नहीं?'' वकील साहब थोड़ा रुके और फिर बोले, ''वह अपना पूरा जीवन आपके नाम की रजिस्ट्री करके आपके घर आ गई, बिना किसी रिस्क की परवाह किए। उसने कभी नहीं सोचा कि अगर कभी आप बदल गए तो उसका क्या होगा? और आप....''

कमरे में खामोशी छा गई। तभी सुधा चाय की ट्रे लेकर आई। सुरेश ने जब उसकी ओर देखा, तो उन्हें उस चेहरे में बीस सालों का वह त्याग, समर्पण और निस्वार्थ प्रेम दिखाई दिया जिसे वे अब तक सामान्य मान बैठे थे। सुधा की सौम्य मुस्कुराहट के आगे सुरेश को अपनी सोच बहुत छोटी और खोखली लगने लगी। सुरेश की नजरें शर्म से झुक गईं। उन्होंने गहरी सांस ली और वकील साहब की ओर फाइल बढ़ाते हुए कहा, ''कागजात तैयार कीजिए वकील साहब। घर उसी के नाम होगा, जिसने मकान को घर बनाया है।'' सुधा को पता भी नहीं था कि वहां क्या बात हुई पर सुरेश के दिल का बोझ उतर चुका था। भरोसा कागजों पर नहीं, यादों और साथ जिए गए सालों पर टिका था। ◆

पता : फ्लैट न.एफ.–1, उत्सव रेजीडेंसी, प्लॉट न.–118–119, गायत्री नगर बी, महारानी फार्म, दुर्गापुरा, जयपुर–302018
मो. : 9828037056

कारुं का खजाना

❑ डॉ. नीलोत्पल रमेश

समकालीन कथा–साहित्य, यथार्थ से भी आगे की बातों को पकड़कर आगे बढ़ रहा है। पहले के कथाकारों से आज के कथाकार तीव्रगामी सोच रखते हैं। इनकी कहानियों में वे सारी बातें पहले ही आ जाती हैं, जिसकी कल्पना हम वास्तव में नहीं कर पाते हैं। लेकिन समय और परिस्थितियां ऐसी आ जाती हैं कि वही हू–ब–हू घटित होते दिखाई देने लगता है। आज की कहानियां भविष्य–द्रष्टा की तरह पाठकों के सामने प्रस्तुत हो रही हैं।

हिन्दी कथा–साहित्य में हाल के वर्षों में जिन कथाकारों ने अपनी पहचान बनायी है, उनमें से एक महत्वपूर्ण नाम राम नगीना मौर्य का है। इनकी कहानियां बनाव–श्रृंगार से इतर की कहानियां हैं। इनमें रोजमर्रा के जीवन की अनेक अनुभूतियां समाहित हैं। साथ ही इनकी कहानियों को पढ़ने के बाद लगता ही नहीं कि ये कहानियां हमारे इर्द–गिर्द नहीं घूम रही हैं। ये तो ऐसी लगती हैं, जैसे पाठक के साथ ही यह सब घटित हो रहा हो। इनकी कहानियां एक नई भाषा, नये कहन और नये भावभूमि की कहानियां हैं, जिससे कहानी के एक नये दौर की शुरुआत हुई है। जो आगे चलकर और समृद्ध ही होगी, ऐसी आशा है।

'कारुं का ख़ज़ाना' राम नगीना मौर्य की 11 चयनित कहानियों का संग्रह है जिसमें राम नगीना मौर्य के आठ प्रकाशित कहानी–संग्रहों में से चयनित की गई कहानियां हैं। इनके आठ कहानी–संग्रह हैं– 'आखिरी गेंद' (2017), 'आप कैमरे की निगाह में हैं' (2018), 'सॉफ्ट कॉर्नर' (2019), 'यात्रीगण कृपया ध्यान दें' (2020), 'मन बोहेमियन' (2021), 'आगे से फटा जूता' (2022), 'खूबसूरत मोड़' (2023) तथा 'ठलुआ चिंतन' (2024)। इनके प्रारंभिक छह कहानी–संग्रहों में से 23 चयनित कहानियों का एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है– 'राम नगीना मौर्य की 23 चयनित कहानियां'।

'अपनी बात' में राम नगीना मौर्य ने कहानियों की रचना–प्रक्रिया के बारे में खुलकर लिखा है। उन्होंने लिखा है– ''कभी–कभी घर–दफ्तर, दोस्तों संग, यात्रा या बाजार आदि जहां कहीं भी कुछ नए विचार, कोई नई बात जेहन में क्लिक कर जाए, वहीं थोड़ी देर रुककर अपनी जेब में रखे किसी कागज के टुकड़े या किसी पर्ची पर उन्हें नोट कर लेता हूं।

फिर घर जाकर उसे अपनी किसी–न–किसी कहानी में एडजस्ट करते, फेयर कर लेता हूं। जहां कहीं भी रहूं, एक कागज, एक पेन हमेशा साथ रखने की इस आदत के बहुत फायदे हैं।''

अपनी कहानियों पर काम करने के बारे में उन्होंने लिखा है कि ''एक समय में दो–तीन कहानियों पर काम करते, कभी–कभी ऐसा भी हो जाता है कि कुछ नए प्रसंग आए, कुछ नए लोगों से मुलाकात हुई, कुछ नया पढ़ा, तो दिलो–दिमाग में विमर्श की दिशा बदल जाती है। ऐसे में अंत आते–आते कुछ कहानियों का स्वरूप भी बदल जाता है। कभी–कभार शीर्षक पर भी पुनर्विचार करना पड़ता है।कहानीकार के दिमाग में अपनी कहानियों को लेकर मंथन चलता ही रहता है। मेरा भी मानना है कि कहानीकार एक ही समय में लेखक, पाठक, संपादक, समीक्षक और आलोचक भी होता है।''

'कारुं का खजाना' कहानी के माध्यम से कहानीकार ने एक अखबार के रविवारीय परिशिष्ट की खोज को कथा का विषय बनाया है। इस कहानी का कथा–नायक एक रचनाकार है। इसी कारण उसे इस रविवारीय परिशिष्ट से विशेष लगाव हो जाता है। वह प्रत्येक रविवार का रविवारीय परिशिष्ट संभालकर रखता है। लेकिन एक दिन हॉकर ने अखबार का रविवारीय परिशिष्ट नहीं दिया। इस परिशिष्ट को प्राप्त करने के लिए उसके द्वारा किये गये प्रयास को कथाकार ने बहुत ही संजीदगी से प्रस्तुत किया है। थक–हारकर कथा–नायक को वह परिशिष्ट नहीं ही मिलता है, पर बहुत ही नाटकीय ढंग से उसके किरायेदार द्वारा उसी परिशिष्ट में पकौड़े भेजना, जिस पर उसकी नजर पड़ती है तो वह बहुत खुश हो जाता है। उसे वह रविवारीय परिशिष्ट मिल जाता है जिसके लिए वह बेचैन था। उसे लगा कि जैसे कारूं का खजाना मिल गया हो। यह बहुत ही मार्मिक कहानी बन गई है।

'नयी रैक' में कहानीकार ने एक रचनाकार की बेचैनी का जिक्र किया है। एक रचनाकार यानी नीलाम्बर प्रसाद को, घर में बेतरतीबी से रखीं ढेरों किताबों, पत्र, पत्रिकाओं को सहेजने वास्ते एक नयी रैक की जरूरत महसूस होती है, लेकिन पत्नी मना कर देती है। फिर भी धुन के पक्के नीलाम्बर प्रसाद एक नयी रैक बनवाकर घर में ले ही आते हैं, जिसकी वास्तविक कीमत पत्नी को नहीं बताते हैं। बताते हैं तो सिर्फ कारीगर की मजदूरी ही। पत्नी से झूठ बोलकर नीलाम्बर प्रसाद ने ठीक ही किया है, नहीं तो घर में बेवजह उन्हें मुश्किलों का सामना करना पड़ता। नई रैक बनवाने की कवायद में हुए अनुभवों का बयान करते, कारीगरों की मनमानी और उनकी बॉरगेनिंग का जिक्र करने में भी कहानीकार सफल हुआ है।

'सरनेम' कहानी के माध्यम से कथाकार ने एक ऐसे व्यक्ति के चरित्र को चित्रित किया है जिसे सरनेम ने काफी परेशान किया था। सरनेम के चलते नरोत्तम दास को काफी चिंता होती है। उन्हें विश्वविद्यालय में पुरस्कृत किया गया था। उनका फोटो और नाम भी अखबार में छपा था। फोटो धुंधला था तो उनके नाम 'नरोत्तम दास' की जगह 'नरोत्तम प्रसाद' छप गया था। यही उनकी परेशानी का कारण था। उन्हें आशंका थी कि वर्षों बाद जब लोग इस अखबार की कटिंग देखेंगे तो उन्हें विश्वास ही नहीं होगा कि 'नरोत्तम प्रसाद' मैं ही हूं। गलती से अखबार वालों ने 'दास' की जगह 'प्रसाद' लिख दिया था। सरनेम वाली परेशानी नरोत्तम दास को वर्षों तक सालती रहती है। एक व्यक्ति की बेचैनी और उससे उत्पन्न मनःस्थिति को इसमें कहानीकार ने बहुत बढ़िया ढंग से प्रस्तुत किया है।

'गलतफहमी' कहानी के माध्यम से कहानीकार ने यह बताने की कोशिश की है कि जब व्यक्ति अपने तक ही सीमित हो जाता है, तो आस–पड़ोस के लोगों के बारे में उसे कोई जानकारी नहीं रहती है और पड़ोस वालों को उनके बारे में।लेखक ने पत्नी से पड़ोसन के बारे में कहा कि उन्हें मेरे बारे में कोई गलतफहमी हो गई है, तो पत्नी ने कहा कि गलतफहमी उन्हें नहीं, आपको है। यह हर समय मोबाइल में मुंह घुसाए रहने की आदत हमें वास्तविकता से दूर ले जाती है। तभी तो यह आभासी दुनिया कहलाती है। मोबाइल ने सामाजिकता को खत्म कर दिया है। लोग एकाकी होकर रह गए हैं। यह कहानी इस संदेश को देने में पूरी तरह सफल हुई है। लेखक की पत्नी का यह कथन बहुत मायने रखता है– ''यदि आपको आपके आस–पड़ोस वाले ही अच्छी तरह न जानते हों, तो ये पॉपुलरिटी किस काम की ?''

'दो फरियादी' कहानी के माध्यम से कहानीकार ने कार्यालयों में होने वाले कामकाज के तौर–तरीकों पर प्रकाश डाला है। कामकाज के सिलसिले में एक कार्यालय में संयोगवश मिले दो फरियादी हैं, और वे दोनों थोड़ा ऊंचा सुनते हैं। इस वजह से दोनों में दोस्ती हो जाती है। उन्हें जिन साहब से काम था, वे उस दिन कार्यालय आए ही नहीं

थे। इस तरह वे दोनों एक–दूसरे का मोबाइल नंबर लेकर पुनः मिलने का वादा करके चले जाते हैं। कहानीकार ने लिखा है– ''उतनी देर में उनके बीच एक अदृश्य, अनजाना, अपनापा–सा स्थापित हो गया था।'' कोई–न–कोई वजह तो रही होगी, जिसके कारण दोनों फरियादी एक–दूसरे के नजदीक आ जाते हैं। यह दो फरियादियों की लगभग एक जैसी समस्याओं, उनसे उपजी परिस्थितियों की मनोविश्लेषणपरक कहानी है।

'अनामंत्रित' कहानी के माध्यम से कहानीकार ने बीतते समय के साथ बदलते परिवेश का जिक्र किया है। सम्यक जी के माध्यम से उन्होंने एक ऐसे चरित्र का निर्माण किया है जिसे सोशल मीडिया का चस्का लग गया था। किसी के साथ मिलने–जुलने के बाद सोशल मीडिया पर बढ़ा–चढ़ाकर फोटो पोस्ट करना उनकी आदत में शुमार हो चुका था। कहानी की शुरुआत उनकी बेटी द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई तस्वीरों की ओर पापा का ध्यान दिलाने से होती है जिसमें सम्यक जी, उनकी पत्नी और बेटी भी शामिल थीं, परन्तु ज्यादातर तस्वीरों में उनकी उपस्थिति नहीं थी। कारण सम्यक जी से मित्र–मंडली का कान्नी कटाना था। किस तरह कुछ लोग, किन्हीं परिस्थितियोंवश मित्र–मंडली से कब अवांछित हो जाते हैं, उन्हें पता ही नहीं चलता। इस विषय पर यह कहानी बहुत ही मार्मिक बन पड़ी है। अंत में कहानीकार ने लिखा है– ''खैर! वो कहते हैं न कि मुंह से बड़ा कौर उठाने, चादर से बाहर पांव फैलाने की अपनी जगजाहिर दिक्कतें तो हैं ही। फिर जैसा हम सोचते हैं, वैसा हमेशा होता ही कहां है? बात बस्स इतनी–सी है।'' यही कारण है कि सम्यक जी मित्र–मंडली से कटते चले गए हैं।

'बेचारा कीड़ा उर्फ हाथ में आया सिफर' कहानी के माध्यम से कहानीकार ने कथानायक समर को दो प्रेमिकाओं वर्तिका व भूमिका के बीच झूलते हुए दिखाया है। लेकिन जब प्रेमिकाएं अपना–अपना निर्णय कथानायक को सुनाती हैं, तो उसे यथास्थिति का बोध होता है। कहानीकार ने लिखा है– ''समर को प्रकृतिस्थ होने में एक–दो मिनट लगे। सामने मेज पर पड़ा शादी का कार्ड उसे चिढ़ाता नजर आया। समर को महसूस हुआ... जैसे किसी कीड़े ने उसके बाएं कान के नीचे जोर से काटा हो। उसने एक जोरदार थप्पड़ अपने कान के नीचे जमाते उस कीड़े को मसलना चाहा। पर अफसोस कि वो कीड़ा वहां से उड़ने में कामयाब हो गया था। सिवा हथेलियां मलने के समर के हाथ कुछ भी नहीं लगा... बोले तो हाथ में आया सिफर...।''

'कुत्ते की दुम' कहानी के माध्यम से कहानीकार ने ऑफिस में काम करने वाले साहब के जनसंपर्क अधिकारी की मनमानी का वर्णन किया है। जनसंपर्क अधिकारी को उसका दोस्त लाख सलाह देता है कि तुम अपनी आदत सुधारो, पर वह सुधरने का नाम ही नहीं लेता है। वह अपनी ही धुन, पद के गुरूर में मदमस्त रहता है। उसका सहपाठी व मित्र उसे समझाने की कोशिश करता है, पर वह समझने वाला नहीं है। उसकी नहीं सुधरने वाली आदत की ही कहानीकार ने 'कुत्ते की दुम' से तुलना की है। कुत्ते की दुम कभी सीधी नहीं हो सकती है। उसी तरह वह जनसंपर्क अधिकारी भी सुधरने वाला नहीं हैं। कहानीकार ने लिखा है– ''फिर तुम तो बॉस के जनसंपर्क अधिकारी हो। ये अलग बात है कि बॉस अगर बिल्डिंग हैं, तो तुम उन्हें बनाने में प्रयोग में लाए जा रहे बिल्डिंग मैटेरियल्स मात्र हो और याद रखो, बिल्डिंग मैटेरियल्स की उम्र नहीं होती। उम्र होती है, उसके इस्तेमाल से बनाई गई बिल्डिंग की।''

'कारूं का खजाना' चयनित कहानी–संग्रह के माध्यम से कथाकार राम नगीना मौर्य ने पाठकों को यह ध्यान दिलाने की कोशिश की है कि कहानी के लिए किसी विषय–वस्तु का होना जरूरी नहीं है, बल्कि दैनिक क्रिया कलापों के बीच में आए प्रसंगों पर भी कहानी लिखी जा सकती है। कथाकार ने कथा– पात्रों के मध्य दिलचस्प एवं मनोविश्लेषणपरक संवाद स्थापित करते हुए कहानी जगत में नई राह की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करवाया है। इनकी भाषा सहज, सरल और आम बोलचाल की है। कहानियों की पठनीयता गजब की है। एक बार कहानी पढ़ना शुरू करने के बाद बिना उसे पूरा किए, छोड़ने का मन नहीं करता है। पुस्तक की छपाई साफ–सुथरी है। प्रूफ की गलतियां नहीं हैं। ◆

'कारूं का खजाना' : कहानी–संग्रह
कथाकार : राम नगीना मौर्य
प्रकाशक : रश्मि प्रकाशन, लखनऊ–226023
मूल्य : रु.250/– रुपये
पृष्ठ : 167, वर्ष : 2025 ई.

पता : डॉ. नीलोत्पल रमेश, पुराना शिव मंदिर, बुध बाजार, गिद्दी–ए, जिला–हजारीबाग, झारखण्ड–829108
मो. : 9931117537

मुझे अब डर नहीं लगता

–सैय्यद नाजिश अहमद

किसी के दूर जाने से
ताल्लुक टूट जाने से
किसी के मान जाने से
किसी के रूठ जाने से
मुझे अब डर नहीं लगता
किसी को आजमाने से
किसी के आजमाने से
किसी को याद रखने से
किसी को भूल जाने से
मुझे अब डर दहीं लगता
किसी को छोड़ देने से
किसी के छो़ड जाने से
न शमां को जलाने से
न शमां को बुझाने से
मुझे अब डर नहीं लगता
अकेले मुस्कुराने से
कभी आंसू बहाने से
न इस सारे जमाने से
हकीकत से, फसाने से
मुझे अब डर नहीं लगता
किसी की न रसाई से
किसी की पारसाई से
किसी की बेवफाई से
किसी दुःख इंतहाई से
मुझे अब डर नहीं लगता
न तो इस पार रहने से
न तो उस पार रहने से
न अपनी ज़िन्दगानी से
न इक दिन मौत आने से
मुझे अब डर नहीं लगता।।

पता : अली अपार्टमेन्ट, राधाग्राम, ठाकुरगंज,
लखनऊ–226003
मो. : 9305365035

भारत सरकार के रजिस्ट्रार आफ न्यूज पेपर्स की रजिस्ट्री संख्या 33122/78
भारतीय डाक विभाग की डाक पंजीयन संख्या–एल.डब्लू./एन.पी. 432/2006

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रमुख प्रकाशन

उत्तर प्रदेश मासिक	:	समकालीन साहित्य, संस्कृति, कला और विचार की मासिक पत्रिका समूल्य उपलब्ध एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
नया दौर (उर्दू)	:	सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विषय की एक उर्दू मासिक पत्रिका, एक अंक रु. 15/– मात्र, वार्षिक मूल्य रु. 180/– मात्र।
वार्षिकी (हिन्दी/अंग्रेजी)	:	उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के विस्तृत आंकड़ों एवं सूचनाओं का वार्षिक विवरण मूल्य रु. 325/– मात्र।

महत्वपूर्ण प्रकाशनों के लिए सम्पर्क करें

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र.
दीनदयाल उपाध्याय सूचना परिसर, पार्क रोड, लखनऊ
उत्तर प्रदेश के समस्त जिला सूचना कार्यालय

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. स्वत्वाधिकारी के लिए विशाल सिंह, निदेशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ.प्र. लखनऊ द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश पैकेजर्स, लखनऊ में मुद्रित प्रभारी संपादक – दिनेश कुमार गुप्ता